संसारसागरमन्थनम्

द्वितीय खण्ड

सूर्य का अधोगमन

(त्रिविक्रमाधोगाश्रीः)

हिन्दीरूपान्तरकार
श्री पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव



अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्
लखनऊ

संसार-सागर-मन्थनम्

(द्वितीय खंड)

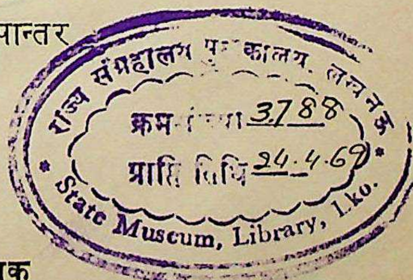
पूने (महाराष्ट्र) के एक विद्वान ब्राह्मण के पास
पीढ़ियों से सुरक्षित संस्कृत हस्तलिखित
ग्रन्थ का पूने के तत्कालीन कलेक्टर

श्री एफ० डब्लू० बेन आई० सी० एस०

द्वारा किये गए अँग्रेजी अनुवाद का

श्री पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव एम० ए०

द्वारा प्रस्तुत
हिन्दी रूपान्तर



प्रकाशक

अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्

लखनऊ

प्रकाशक

अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्,

लखनऊ

प्रथम संस्करण २१००

सन् १९६३ ई०

मूल्य दो रुपये मात्र

मुद्रक

सरयू प्रसाद पांडेय

नागरी प्रेस

दारागंज, प्रयाग ।

सूर्य का अधोगमन

(भवचक्र)



त्रिविक्रमाधोगाश्रीः

[त्रिविक्रम (विष्णु, सूर्य) की अधोगामिनी शोभा]



"स्वप्ने ततो मया दृष्टं नभसश्च्युतमम्बुजम्"

(तब स्वप्न में मैंने आकाश से गिरा हुआ कमल देखा)

जाग्रत्स्वप्नप्रपंचदर्शनम्

(जाग्रत अवस्था में स्वप्न प्रपंच का दर्शन)

सोती है मूर्छित चन्द्रकला,
जैसे पृथ्वी की छाया में !
है आत्मा मोहग्रस्त होता,
वैसे जीवन की माया में ।
देखता क्षणिक दु:ख-स्वप्न विकल,
रँग इन्द्रधनुष के रंगों में !
बुदबुद सा टकराता फिरता,
भवनिधि की लोल तरंगों में ।

प्रकाशकीय वक्तव्य

"संसारसागरमन्थनम्" का यह द्वितीय सुधाविन्दु पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। यह आख्यानमाला एक अँग्रेजी ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तर है; किन्तु उक्त अँग्रेजी ग्रन्थ स्वयं एक संस्कृतग्रन्थ का अनुवाद मात्र है। हमें इस बात का अत्यन्त खेद है कि हम बहुत प्रयत्न करने पर भी मूल संस्कृत ग्रन्थ का पता नहीं लगा पाये और इसलिए उसे प्रकाशित करने में असमर्थ हैं।

मूल संस्कृत ग्रन्थ, अनुवादक श्री एफ० डब्लू बेन को बहुत दिन हुए पूना में एक मरणासन्न संस्कृत के पण्डित से मिला था। वह जिस प्रकार उन्हें मिला था, उसकी कहानी भी कम रोचक नहीं है। उक्त कहानी को श्री बेन ने "संसारसागरमन्थनम्" के प्रथम खण्ड की भूमिका में विस्तार से लिख दिया है। कृपया पाठक वहीं से इसका रसास्वादन करें।

ग्रन्थ का अँग्रेजी अनुवाद इँगलैण्ड में ही प्रकाशित हुआ था। वहाँ उसके अब तक कई संस्करण निकल चुके हैं। दीर्घकाल तक इस भारतीय पीयूष का आनन्द विदेशों के अँग्रेजी पाठक लेते रहे। दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश की कृति हमारे देश में इतने समय बाद उपलब्ध हो सकी। वह भी संस्कृत में नहीं, हिन्दी में।

अनुवादक, श्री एफ० डब्यू० बेन का बहुत दिन हुए देहान्त हो गया।

अँग्रेजी संस्करण के प्रकाशकों से लिखा-पढ़ी करने पर ज्ञात हुआ कि श्री बेन के वंशजों में उनकी केवल एक पुत्री विद्यमान है, जो आस्ट्रेलिया में रहती है। प्रकाशकों ने ही कृपा करके उस पुत्री का पता भी लिख भेजा। हमने ग्रन्थ को मूल हस्तलिखित प्रति का पता उपर्युक्त प्रकाशकों से लगाने के अतिरिक्त इस सम्बन्ध में श्री बेन की उक्त पुत्री से भी लिखकर पूछा, किन्तु न प्रकाशक ही कुछ बतला सके और न वही। इँगलैण्ड में जितने ऐसे संग्रहालय या पुस्तकालय हैं, जहाँ संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों के होने की सम्भावना थी, वहाँ भी हमने श्री बेन को ब्राह्मण द्वारा प्राप्त मूल हस्तलिखित ग्रन्थ का पता लगाने का भरसक प्रयत्न किया; किन्तु वहाँ भी असफलता ही हाथ लगी।

इस देश का, विशेषकर संस्कृत का कहानी साहित्य, प्राचुर्य और उत्कृष्टता दोनों ही दृष्टियों से ऐसा है, जिसके लिए हम वास्तविक गर्व कर सकते हैं। वास्तव में कहानियों के क्षेत्र में भारतीय कहानी-साहित्य ने समस्त विश्व-साहित्य को प्रभावित किया है। किन्तु खेद है कि हमारा बहुत-सा-कहानी-साहित्य अब भी लुप्त है या नष्ट हो चुका है। प्रस्तुत विशाल ग्रन्थ भी इसी कोटि में आता है।

हमें पहले इस बात का सन्देह था कि श्री बेन के अँग्रेजी अनुवाद के हिन्दी रूपान्तर का प्रकाशन हमारी संस्कृत परिषद् के उद्देश्यों के अन्तर्गत आ सकता है या नहीं और इसी से हमें इस कार्य को हाथ में लेने में कुछ संकोच भी था। हम उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री डा० सम्पूर्णानन्द जी के अत्यन्त कृतज्ञ और आभारी हैं कि उन्होंने न केवल इस सन्देह और संकोच का निवारण ही किया, अपितु हमें अपना

आशीर्वाद तथा सरकारी कोष से पाँच सहस्त्र रुपए देकर इस ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित भी किया। उन्होंने कहा कि मूल संस्कृत ग्रन्थ के विषय में हतोत्साह होने की आवश्यकता नहीं है, सम्भव है वह आगे चलकर मिल ही जाय, किन्तु जब तक वह न मिले, तब तक इस देश के लोगों को, विशेषकर हिन्दी जानने वालों को, इस संसारसागरमन्थनोद्भूत सुधा से वंचित रखना परिषद् के उद्देश्यों के प्रतिकूल होगा।

हम उत्तर प्रदेश के शिक्षामंत्री आचार्य जुगल किशोर जी के भी आभारी हैं कि उन्होंने कृपापूर्वक ढ़ाई सहस्त्र रुपए और देकर इस कार्य को आगे बढ़ाने में हमारी सहायता की।

श्री बेन ने अपने अनुवाद में मूलग्रन्थ के अतुलनीय लालित्य और अवर्णनीय माधुर्य को अँग्रेजी भाषा में उतारने का स्तुत्य प्रयत्न किया है और बहुत अंशों में उन्हें उस दिशा में सफलता भी मिली है; किन्तु अनेक स्थानों पर उन्हें स्वयं स्वीकार करना पड़ा है कि संस्कृत का अमुक पद या अमुक शब्दावली अंग्रेजी में अनूदित हो ही नहीं सकती। हिन्दी में अवश्य हो सकती थी, किन्तु मूलग्रन्थ के अभाव में यह हमारे लिए भी नहीं सम्भव हो सका। फलतः संस्कृत का रसमाधुर्य इस हिन्दी रूपान्तर में भी आने से रह गया है, जिसका खेद हमें कम नहीं है।

श्री बेन अभारतीय होते हुए भी संस्कृत के विद्वान और प्रेमी थे। 'संसारसागरमन्थनम्' का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत करके और उसके द्वारा संस्कृत भाषा तथा संस्कृत वाङ्मय के प्रति अँग्रेजी पाठकों, विशेषकर

विदेशियों में अनुराग उत्पन्न करके उन्होंने संस्कृत की वास्तविक सेवा की है। हम इसके लिए हृदय से उनके आभारी हैं।

हमारे अनुरोध पर श्री बेन के अँग्रेजी अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत करके उत्तर प्रदेश शासन के विशेषकार्याधिकारी श्री पुरुषोत्तमलाल जी ने हिन्दी जगत का बड़ा उपकार किया है। इसके लिए हम श्री पुरुषोत्तमलाल जी के भी आभारी हैं।

जहाँ तक प्रस्तुत हिन्दी रूपान्तर का सम्बन्ध है, विद्वान अनुवादक ने मूल संस्कृत ग्रन्थ की भाषा और भावों तक पहुँचने का भरसक प्रयत्न किया है, किन्तु यह कार्य कितना कठिन था, यह पाठक स्वयं समझ सकते हैं और वे ही यह भी समझ सकते हैं कि अनुवादक इसमें किस सीमा तक सफल हुआ है।

इस ग्रन्थ की कहानियाँ ज्ञानप्रद ही नहीं अत्यन्त रोचक भी हैं। हमें विश्वास है कि इससे पाठकों की ज्ञानवृद्धि और मनोरंजन दोनों ही होंगे। यदि वह विश्वास अंशतः भी सत्य निकला तो परिषद् इस प्रयास में अपने को सफल समझेगी।

गोपालचन्द्र सिंह
मंत्री
अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्
लखनऊ

निर्देश

भूमिका

यह एक परियों की कहानी है जिसे मैंने एक प्राचीन हिन्दू हस्तलिखित ग्रंथ में पाया था। जैसा इसके शीर्षक से प्रकट है, यह एक सूर्योपाख्यान है। इसके नाम का शब्दश: अनुवाद होगा--'सूर्यास्त की शोभा।' परन्तु यह तो उसके अन्तर्निहित रहस्यार्थ का केवल ऊपरी, भौतिक आवरण मात्र है। वह अन्तर्निहित अर्थ है—त्रिविक्रम (तीन डग वाले विष्णु, सूर्य, या उत्तर काल के कृष्ण अथवा हिन्दू अपोलो) के अवतरण—अवतार की दिव्य शोभा[1]। सूर्य के इस विशेषण की व्याख्या ऋग्वेद की एक प्रसिद्ध ऋचा (१।२२।१७)[2] में इस प्रकार है—'विष्णु ने तीन डग भरे: तीन बार उन्होंने अपने चरण रक्खे।' सूर्योदय, मध्याह्न और सूर्यास्त की यह एक औपाख्यानिक व्याख्या है। परन्तु ऋग्वेद की प्राचीन उदात्त और

१—श्री का अर्थ 'दिव्य कमल' भी है और यह चन्द्रमा की बारहवीं कला का नाम है। इस प्रकार यह प्रस्तुत आख्यानमाला के भीतर इस कहानी के स्थान का सूचक है। इस आख्यानमाला और मूल हस्तलिखित ग्रंथ के विवरण के लिये पाठक कृपया "संसार-सागर-मन्थनम्" के प्रथम खण्ड की भूमिका देखने की कृपा करें।

२—और भी, १।१५४,१५५ तथा अन्यत्र। 'तीन पद' की व्याख्या के संबंध के विद्वानों में मतभेद है, परन्तु यहाँ उनके मतों की समीक्षा अप्रासंगिक है।

सरल अभिव्यक्ति को उत्तरकालीन पौराणिक व्याख्याओं ने विकृत कर दिया। नवीन उपाख्यान के अनुसार विष्णु ने वामनावतार में तीन पग में त्रिलोक को नाप कर अपने शत्रु बलि को छला। हमारे प्रस्तुत शीर्षक में प्राचीन भाव को एक भिन्न मोड़ दिया गया है जिसे हम इस प्रकार अभिव्यक्त कर सकते हैं कि 'विष्णु के पद' सूर्य के उदय से न प्रारंभ होकर उसके अस्त से प्रारंभ होते हैं। उनका क्रम इस प्रकार है—सूर्यास्त, रात्रि का रहस्यमय अन्धकार काल, फिर सूर्योदय। सूर्य का यह उलटा चक्र है जिसका आदि युग के मानव के मन पर इतना अधिक प्रभाव था, और यह उन्हें जन्म और मृत्यु के रहस्य का प्रतीक सा प्रतीत होता था।

हमारी यह कहानी अत्यन्त विचित्रतापूर्ण है, जो अनुवादक की दृष्टि में अंग्रेजी कलेवर में प्रस्तुत की जाने के लिये अनुपयुक्त नहीं है। इसमें संक्षेप में ही इतना अधिक भाव भर दिया गया है कि इसे 'गागर में सागर' कहना अनुचित न होगा। भाव और रूप दोनों की दृष्टि से यह कहानी पूर्णतः हिन्दू है और वह ऐसे अंग्रेजों के लिये प्रस्तुत है जिनके भाव और वृत्तियाँ उन दार्शनिक उपाख्यानों के संस्कार से पूर्ण हों, जिनका आंशिक परिचय उन्हें 'महापतन' (The fall) की कहानी में, मिल्टन के महाकाव्य में, कितनी ही परियों की कहानियों में और यत्र-तत्र पाइथेगोरस और प्लेटो की उक्तियों तथा कुछ प्राचीन धार्मिक कथाओं में मिलता है। घोर अन्धकार में जगमगाती ज्योति, सूर्य की रात्रि, एक अभिशप्त स्वर्गीय आत्मा का कुछ काल तक जन्म-मरण का दुःख भोगने के लिये इस अन्धकारमय मर्त्यलोक में 'अवतरण'—कुछ इसी प्रकार के शब्दों में हम इस कहानी के मुख्य भाव को व्यक्त कर सकते हैं। परन्तु संस्कृत से अपरिचित पाठकों के लिये यह

बतला देना उचित होगा कि इस कहानी में आदि से अन्त तक एक गूढ़ संकेत है जिसे वे साधारणतः नहीं पकड़ पाएँगे । यह संकेत कपिल मुनि के—जो टेल्स (Thales) से भी पहले हुए थे—सांख्य दर्शन के उपदेशों की ओर है, जिनके अनुसार पुरुष का, जो मनुष्य के आत्मा का प्रतिरूप अथवा आदि मानव है, यह कर्तव्य है कि वह प्रकृति का, जो भौतिक प्रकृति का स्त्री-रूप अथवा नित्य स्त्री-रूप है, तब तक पीछा करता रहे जब तक उसे पा न जाय । ज्यों ही वह उसे पा जाता है त्यों ही वह (प्रकृति) एक 'नटी की भाँति'[1] तुरन्त अदृश्य हो जाती है । इस विषय में यह कहानी कुछ-कुछ जयदेव के 'गीत गोविन्द' की याद दिलाती है जिसमें कुछ व्याख्याकारों के मतानुसार सुन्दरी राधा के रूप में जीव द्वारा परमात्मा की खोज का वर्णन है; क्योंकि हिन्दू साहित्य में पवित्र प्रेम और पारलौकिक प्रेम दोनों को सर्वत्र एक साथ व्यामिश्रित कर दिया गया है ।

यह समझना उचित नहीं होगा कि इस कहानी में संकेतित उपदेश आधुनिक भारत में मृत अथवा सर्वथा अमान्य हो गए हैं । एक दिन सन्ध्या समय इस अनुवाद की अन्तिम पंक्तियाँ समाप्त करने के पश्चात् मैं गोधूलि के झुटपुटे प्रकाश में बाहर निकला और लगभग आध मील दूर नदी के पुल पर चला गया । उस समय हवा का नाम तक न था । वह रात्रि ऐसी नीरव और स्तब्ध थी जैसी मीडिया ने अपने मंत्रों की सिद्धि के लिये चुनी

१—इस दृष्टि से रात्रि का काल तमस् का अर्थात् सांख्य दर्शन के प्रसिद्ध तीन गुणों में से तमोगुण का काल है जो ज्योति का विरोधी है; अथवा वह अज्ञान, असत् और इहलोक का प्रतीक है जो क्रमशः ज्ञान, सत् और परलोक के विरोधी हैं ।

थी । आकाश में झिलमिलाते तारों के अतिरिक्त किसी भी वस्तु में गति नहीं थी । नीचे चराचर जगत् निद्रामग्न था । वृक्ष सब चित्र के समान नीरव थे और पत्तियाँ ऐसी निश्चल थीं मानो वे पत्थर में खोदकर बनाई गई हों । केवल बीच-बीच में कोई गेदुर किसी डाल में से चीत्कार के साथ झपट कर उड़ जाता था । पुल पर खड़े-खड़े मुझे दूरस्थित पेशवाओं के नगर से आती हुई टमटमों की क्षीण ध्वनि सुनाई पड़ती थी । मैंने पश्चिम दिशा में नदी के चढ़ाव की ओर दृष्टि की । सूर्य अस्त हो चुका था, उसके पीछे केवल एक गाढ़ी लालिमा शेष थी जो आकाश में ऊपर की ओर क्रमशः अन्धकार में विलीन हो गई थी । उस लालिमा और अन्धकार की ठीक सीमा-रेखा पर, उस 'नीललोहित' रंग में जो भगवान शिव का प्रिय विशेषण है—स्नात द्वितीया का अत्यन्त सुन्दर वक्र एवं क्षीण चन्द्रमा किसी स्वप्नदृष्ट पदार्थ की भाँति लटक रहा था । नीचे नदी के बाँध द्वारा अवरुद्ध शान्त विस्तृत जलराशि एक विशाल दर्पण के समान प्रतीत होती थी, जिसमें ऊपर का सम्पूर्ण दृश्य प्रतिबिम्बित हो रहा था । मैंने पीछे घूमकर पूर्व दिशा की ओर देखा, नदी अलग-अलग धाराओं में विभक्त होकर वह रही थी । सर्वत्र अन्धकार छाया हुआ था । परन्तु नदी के दाहिने तट पर लगभग दो सौ गज की दूरी पर एक लाल स्थल दिखाई पड़ा जिसमें से आग की लपटें उठ रही थीं । एक व्यक्ति प्लेग में मर गया था उसी का शव तट पर जलाया जा रहा था, क्योंकि यहाँ पूना में आज भी वही रीति प्रचलित है जो प्राचीन काल में होमर के समय में थी ।

अचानक मेरे पीछे की ओर से ये शब्द सुनाई पड़े—'ठंडी रात में वे खूब अच्छी तरह जलाते हैं ।' मैंने घूमकर पीछे की ओर देखा । मेरे पास

एक हिन्दू खड़ा था जिसका वास्तविक नाम बतलाना मैं अवैध समझता हूँ। उसके श्वेत वस्त्र होली के त्यौहार के चिह्न स्वरूप लाल धब्बों और छींटों से रँगे हुए थे।

मैंने कहा—'क्यों विश्वनाथ, तुम यहाँ क्या कर रहे हो? क्या तुम भी मेरी तरह केवल सूर्यास्त का दृश्य देखने और हवा खाने के लिये आए हो?'

विश्वनाथ ने निश्चिन्त भाव से आकाश की ओर देखा और कहा—'हाँ, यहाँ से वह अच्छी तरह दिखाई देता है। परन्तु मैं तो उसे कितनी ही बार देख चुका हूँ। कल शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा थी।'

मैंने कहा—'और शीघ्र ही पूर्णिमा भी आ जायगी। देखो विश्वनाथ, यहाँ का दृश्य बड़ा विचित्र है। वह देखो उस ओर, चन्द्रमा अग्निकुण्ड में विश्राम करने के लिये सूर्य का अनुगमन कर रहा है, और उसमें तपकर दोनों ही कल और अधिक सुन्दर रूप में प्रकट होंगे। और उधर नीचे देखो, एक दूसरी वस्तु अग्निसात् हो रही है, परन्तु उसका क्या परिणाम होगा?'

और मैंने दूसरी दिशा में धधकती हुई चिता की ओर संकेत कर दिया।

उस हिन्दू ने क्षण भर उधर देखा और फिर मेरी ओर देखकर कहा—'इसका भी वही परिणाम होगा।'

'क्या? क्या तुम सोचते हो कि वह मृत व्यक्ति भी सूर्य और चन्द्रमा की भाँति फिर संसार में लौट आएगा?'

कुछ क्षणों तक वह चुप रहा। फिर धीरे-धीरे बहुत मद्धिम स्वर में

कहा, जैसे वह मुझसे न कहकर अपने आप ही कह रहा हो—'क्यों नहीं लौट आएगा ? 'न जायते म्रियते वा कदाचित् ।'[1]

मैंने उसकी ओर देखा, परन्तु कुछ कहा नहीं। वह चुपचाप स्थिर दृष्टि से जलती हुई चिता को देखता रहा और मैंने भी उसका अनुकरण किया। चिता की लपटें बुझने लगीं; उनका कार्य समाप्त हो चुका था।

जन्मान्तर; देहान्तर-प्राप्ति; नित्य आत्मा का एक शरीर से दूसरे में, एक जन्म से दूसरे जन्म में बारंबार व्यक्त रूप धारण करते रहना—सम्पूर्ण हिन्दू साहित्य में विविध प्रकार से बस इसी एक भाव की अभिव्यक्ति है जिसका सौन्दर्य ऐसा है कि कोई भी तर्क उसे कभी नष्ट नहीं कर सकेगा, न वह उसकी मान्यता को किंचिन्मात्र भी कम कर सकेगा। क्योंकि संस्कृत भाषा एक प्रकार का पवित्र मन्दिर है जिसकी प्रतिष्ठा केवल इसी दार्शनिक विश्वास को व्यक्त रूप देने और अमर बनाने के निमित्त हुई है। यह विश्वास सभी हिन्दुओं के मन पर पूर्ण रूप से छाया हुआ है; यह उनकी पैतृक या 'क्रमागत' भाव-सम्पत्ति है जो अनादि काल से चली आ रही है। उनके पूर्वज केवल यही एक वस्तु छोड़ गए हैं। और संसार के राष्ट्र, हमारी कहानी के पात्रों के समान, अपनी अवनति और पतन के समय उन सभी बातों से बुरी तरह चिपके रहते हैं जो उन्हें उनकी उस आदर्श उन्नत अवस्था की याद दिलाती है जिसका आभास उनके साहित्य में मिलता है और जो उनके अन्तःकरण में भूले हुए स्वर्ग की धुँधली स्मृति के समान अथवा किसी पूर्व जन्म के क्षीण संस्कारों के समान प्रतिध्वनित होती

१—भगवद्गीता : 'न वह कभी जन्म लेता है न मरता है।'

हैं। दूरी में आकर्षण होता है और समय सूक्ष्य ब्योरों पर पर्दा डाल देता तथा कठोर सत्य को स्वप्नवत् सुन्दर बना देता है; और इस कारण एक विषम एवं कठोर अतीत भी इस प्रकार एक नीले, सुकुमार एवं अत्यन्त सुन्दर चित्र का रूप धारण कर लेता है जैसे उष्ण और उद्भासित सागर के उस पार, बहुत दूर, कुहासे में दिखाई पड़नेवाला कोई नीचा ऊसर द्वीप सुन्दर प्रतीत होता है।

पूना,
मार्च २१,१९७२

सूर्यास्त : अशुभ नेत्र

वन्दना

हे तेजोमय, अनन्त, शान्तात्मा, ऋषीश्वर ! आप अपने ताण्डव नृत्य में परिभ्रमण करते हुए उसका रंग मानो आकाश को प्रदान करते हैं, जिससे उस आकाश-दर्पण में आपके कंठ की नीलिमा और आपके पिंगल जटाजूट में स्थित चन्द्रमा की रजत-कला प्रतिबिम्बित होती है। हम आपको नमस्कार करते हैं। हम उन करीश्वर के सदा विजयी तुण्ड की भी वन्दना करते हैं, जिनकी भयंकर दृष्टि असंख्य प्रतिकूल विघ्नों के समूह को उसी भांति भस्म कर देती है, जैसे दावाग्नि सूखे तृण समूह को।

बहुत दिनों की बात है, हिमालय पर्वत के ढालों पर गन्धर्वों का एक युवक राजा रहता था। उसका नाम था कमल मित्र, क्योंकि वह सूर्य का अंश था। वह उमापति शिव की आराधना करता था। उसने विषय-सुखों से मुँह मोड़ लिया और बहुत दूर कैलास के चारों ओर फैले हुए हिम-शिखरों एवं हिमाच्छादित अधित्यकाओं के बीच चला गया, जहां वह अकेले ही रहने लगा। वहाँ पहले तो वह कुछ दिनों तक पत्तियाँ खाकर रहा, फिर धुएँ, और अन्त में वायु पर ही निर्भर रहकर उसने अत्यन्त कठोर तप किया। इस प्रकार सौ वर्ष व्यतीत हो गए, तब जीवों के स्वामी भगवान के हृदय में करुणा उत्पन्न हुई। वे सन्ध्या के समय उसके सामने

एक ऋषि के वेष में प्रकट हुए, परन्तु उनका शरीर एक ऊँचे वृक्ष के समान विशाल था और उनकी जटा में बालशशि शोभित था। उन्होंने राजा से कहा—"मैं तेरी आराधना से प्रसन्न हूँ। अब मैं तुझे वरदान दूँगा, जो तेरी इच्छा हो माँग।" तब उस राजा ने उनके सम्मुख सिर झुकाकर निवेदन किया—"भगवन्! मैं सदैव इसी प्रकार आपके ध्यान में मग्न रहूँ, यही मेरे लिये पर्याप्त है।" तब महेश्वर ने कहा—"यह तो ठीक है, परन्तु फिर भी तू मुझसे कोई वर माँग।" इस पर कमलमित्र ने उत्तर दिया—"जब ऐसी बात है और मुझे कोई एक वर माँगना ही पड़ेगा, तो मुझे एक ऐसी पत्नी दीजिए, जिसके नेत्र इन पहाड़ियों और इस आकाश के सदृश आपके कंठ की नीली आभा से इस प्रकार परिपूर्ण हों, मानो वे आपके दर्शन से अतृप्त रहकर केवल (आपकी छवि के) क्षणिक दर्पण ही नहीं, प्रत्युत आप की आभा से रंजित स्थायी चित्र बन गए हैं; क्योंकि इस प्रकार वह मेरे लिये आपकी आराधना का माध्यम बन जायगी।"

यह सुनकर चन्द्रशेखर भगवान प्रसन्न हुए। परन्तु अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा उन्होंने जान लिया कि इसका क्या भविष्य होनेवाला है। फिर उन्होंने धीरे-धीरे कहा—"ऐसे नेत्र केवल दूसरों ही के लिये नहीं, तेरे लिये भी विपज्जनक होंगे। परन्तु मैंने तुझे वर दे दिया, तेरी इच्छा पूर्ण होगी।"

यह कहकर वे तो अन्तर्धान हो गए और कमलमित्र हर्षित हो अपने घर आया। शिव भगवान की कृपा से उसकी सम्पूर्ण तपोजन्य कृशता और क्लान्ति दूर हो गई और वह भीम के समान बलवान तथा अर्जुन के समान सुन्दर हो गया। दूसरे दिन सायंकाल वह अपने प्रासाद में पहुँचा और

विश्राम के लिए उद्यान में गया, क्योंकि सूर्य उस समय अस्त हो चला था। परन्तु मार्ग में जाते-जाते उसने सामने दृष्टि उठाई तो अचानक क्या देखता है कि चाँदी के डाँडों वाली एक चन्दन की नौका पर लेटी हुई एक स्त्री श्वेत कमल के सरोवर में विहार कर रही है। उसके नेत्र नीचे की ओर झुके हुए हैं, जिससे उसकी दृष्टि उन हिमोज्ज्वल पुष्पों पर पड़कर उन्हें नीली आभा प्रदान कर रही है। एक हाथ पर वह अपने चिबुक को टेके हुए है और दूसरे हाथ से रक्त के समान लाल एक कमल-पुष्प की पंखड़ियों को एक-एक करके पानी में गिरा रही है। उसके गोल उन्नत नितम्ब सिकता-कूल के समान उठे हुए हैं और उनका प्रतिबिम्ब नीचे प्रशान्त जल में पड़ रहा है। उसके अधर हिल रहे हैं, क्योंकि वह पानी में गिरती हुई पंखड़ियों को गिनती जा रही है।

यह दृश्य देख कमलमित्र साँस रोक, बिना हिले-डुले, चुपचाप खड़ा हो उसे निरखने लगा। उसने समझा कि यह स्वप्न है, अतः उसे भय हुआ कि हिलने-डुलने से कहीं वह भंग न हो जाय। इतने में अचानक उस स्त्री ने दृष्टि उठाई तो राजा को देखकर मुस्करा उठी और राजा उसके नेत्रों के रंग में नहा उठा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं संसार के समस्त नील कमलों के सार से बने हुए नीले रंग के सरोवर में खड़ा हूँ। तब अचानक उसे दिगम्बर भगवान शंकर के दिए हुए वरदान का स्मरण हो आया और वह बोल उठा—"निस्सन्देह तुम स्ववचनपालक भगवान द्वारा भेजी हुई मेरी पत्नी ही हो, कोई अन्य नहीं; क्योंकि कल ही मैंने उनके तेज के दर्शन किए और आज मैं तुम्हारे इन नयनों को देख रहा हूँ। दोनों में कोई अन्तर नहीं है। और यह सत्य है, तो बताओ मैं तुम्हें किस नाम से

पुकारूँ ?" तब उस स्त्री ने कहा—"मेरा नाम अनुशयनी है, और मेरे नेत्रों को बनाने में विधाता का उद्देश्य इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि ये अपने स्वामी के रूप को प्रतिविम्बित करें ?"

इस प्रकार कमलमित्र ने भगवान से ऐसी सुन्दर स्त्री को पाकर उसे पत्नी के रूप में ग्रहण किया और उसके साथ वह कैलास के निकटवर्ती प्रदेश में ही रहने लगा। भगवान के दर्पण स्वरूप उसके दोनों विशाल नेत्रों की छवि का निरन्तर पान करते-करते वह मोहान्ध और उन्मत्त हो गया। वह उसके नयनसागर में (आपाद मस्तक) डूब गया और सम्पूर्ण संसार उसे कुवलय-मय* दिखाई पड़ने लगा। और एक ऐसे भरे हुए पात्र की भाँति, जिसमें और जल न आ सकने के कारण वह ऊपर से बहने लगा हो, उसका हृदय अनुशयनी की सुन्दरता के आनन्द तथा वैसी असाधारण सुन्दरी का अनन्य स्वामी होने के अभिमान से इतना परिपूर्ण हो गया कि वह अपनी भावनाओं को भीतर न रोक सका। अपने मन का भार हलका करने के लिये वह सब जगह घूम-घूमकर उसकी चर्चा करने और इस बात का प्रयत्न करने लगा कि उसी की भाँति प्रत्येक व्यक्ति यह मानने लगे कि उसकी पत्नी की तुलना में संसार की अन्य सभी स्त्रियाँ नगण्य हैं। हाय रे मोह ! कहाँ स्त्री और कहाँ मुक्ति !

सो एक दिन ऐसा हुआ कि वह अपने एक मित्र से अपनी स्त्री के सम्बन्ध में झगड़ पड़ा और उसे इसलिये बुरा-भला कहने लगा कि वह उसकी स्त्री की प्रशंसा में उसके द्वारा कही गई सारी बातें बिना ननु-नच

---

*कुवलय = कमल की जाति का नीला पुष्प जो रात को खिलता है।

के मान लेने को तैयार नहीं था। तब उसका मित्र अचानक अट्टहास कर उठा और बोला—"संसार में सभी व्याधियों की औषध है, यहाँ तक कि सर्पदंश की भी, परन्तु कामिनी के लावण्य से दंशित व्यक्ति की कोई चिकित्सा नहीं। हे काममूढ़! समझ रख, स्त्री, जो पुरुष की अर्द्धांगिनी और उसकी प्रतिच्छाया है, उसका मोहक लावण्य कोई सरल गीत की कड़ी नहीं, प्रत्युत दस सहस्र स्वरों से संयुक्त अनन्त वैचित्र्यपूर्ण है, जो पुरुष के हृदय की समस्त भावनाओं को मथानी की भाँति मथ देती है। तेरी पत्नी की आँखें कितनी भी सुन्दर क्यों न हों, फिर भी आँखें तो आँखें ही हैं, और स्त्री केवल आँख ही नहीं, कुछ और भी है। क्योंकि यदि एक स्त्री झरने की तरह अपने संगीतमय कल हास्य से हमें मोह लेती है, तो दूसरी एक वन-सरोवर की भाँति अपनी छायामयी मौन शान्ति से हमें मुग्ध कर देती है; एक अपने अमृतमय केश-पाश में हमें यम की भाँति बाँध लेती है, तो दूसरी मनोभव के समान हमें अपने विष-बुझे नयन-शरों से विद्ध करती है; एक सूर्य की भाँति हमें काम की ज्वराग्नि से दग्ध करती है तो दूसरी चन्द्रमा के समान हमें अपने कर्पूर-शीतल चुम्बनों से शान्ति प्रदान करती है; एक के पाप के तीव्र डंक से हम बैलों की तरह बींधे जाते हैं तो दूसरी के शुद्ध चरित्र का मोहन मंत्र हमें हाथियों के समान पालतू बना देता है; एक की बाहुलता का प्रलोभन हमें पक्षियों की भाँति फँसा लेता है तो दूसरी के अधर-मधु पर हम भौंरों के समान मँड़राते और उसका पान करते हैं; यदि हम एक बाला की कटिरूपी कोमल शाखा में सर्प की भाँति लिपट जाते हैं तो दूसरी के उरोजों को उपधान बनाकर हम श्रान्त पथिक की भाँति उस पर शयन करना चाहते हैं।"

कमलमित्र को अब और अधिक सुनना असह्य हो गया और उसने कहा—"तुच्छ है तीनों काल और तीनों लोक की समस्त स्त्रियों की मनोमोहकता ! यदि वे सब एक साथ मिलकर स्वयं कामदेव का शरीर भी धारण करने में समर्थ हो जायँ तो भी अनुशयनी की केवल आँखें ही कामारि शिव के नेत्र के समान उसे भस्म कर देंगी। अरे, वे नीले नयन तो अपने अप्रतिवार्य आकर्षण से उन ऋषि-मुनियों को भी तपोभ्रष्ट कर देंगे, जिनको मोहित करने में मेनका, तिलोत्तमा आदि भी असफल हो गईं।"

तब उसके मित्र ने व्यंगपूर्वक हँसकर कहा—"डींग मारना व्यर्थ है, कहने को तो सभी मनुष्य सब कुछ कर सकते हैं और प्रत्येक नारी दूसरी रम्भा है। अतः अब अपनी पत्नी की अनुपम सुन्दरता के विषय में अधिक बकवाद मत करो, उसे अपनी शक्ति का प्रमाण देने दो। यहीं निकट की पहाड़ी पर के जंगल में पाप-नाशक नामक एक वृद्ध मुनि रहते हैं जिनकी तपस्या से देवगण भी भयभीत रहते हैं। तुम्हारी इस विलक्षण पत्नी की उन सुन्दर आँखों के लिये, जिनकी सुन्दरता का अस्तित्व बुद्बुद के समान केवल तुम्हारी बातों की धारा में है, वे उत्तम कसौटी होंगे।"

इस व्यंगबाण से विद्ध होकर कमलमित्र ने क्रोध में आकर कहा—"मूर्ख ! यदि यह उतनी ही सरलता से उस मुनि को (अपनी ओर आकर्षित कर) तप से विरत न कर दे, जितनी सरलता से तृण-मणि तृण को अपनी ओर खींच लेती है, तो मैं स्वयं अपने हाथ से अपना सिर काट कर गंगा में फेंक दूँगा।"

तब उसके मित्र ने हँसकर कहा—"इतनी उतावली मत करो, तुम दक्ष नहीं हो कि तुम्हारा सिर एक बार कट जाने पर फिर से बन जायगा।" परन्तु कमलमित्र झपटा हुआ अनुशयनी की खोज में चला गया। उसने उसे उद्यान में कमल-सरोवर के निकट पाया और उसे अपनी दर्पोक्ति सुना दी और कहा—"तुरन्त आओ और अपने उन आश्चर्यजनक नयनों का प्रयोग कर उनकी शक्ति तथा उनमें निहित मेरे विश्वास को अविलम्ब सत्य सिद्ध कर दो; क्योंकि उस मूर्ख संशयालु व्यक्ति की मूर्खता को प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा सिद्ध कर देने के लिये मैं आतुर हो रहा हूँ।"

तब अनुशयनी ने धीरे से उससे कहा—"प्राणनाथ! आप क्रोध में आ गए और इसलिये आपने विवेक से काम नहीं लिया। मैं डरती हूँ कि हम दोनों कहीं पाप करके दंड के भागी न बनें; क्योंकि मृगशिरा जैसे रोहिणी का अनुसरण करता है उसी प्रकार पाप का फल उसके पीछे-पीछे चलता है। उतावली में किए गए इस कार्य से हमें पाप लगेगा, जिससे हम पर विपत्ति आ सकती है। अतः हमारे लिये अब यही श्रेयस्कर होगा कि हम ऐसे दुर्गम गिरि-शिखर पर चढ़ने का साहस न करें, जहाँ से गिरने पर हम दोनों की हड्डी-पसली का भी पता न लगे।"

परन्तु जब वह यह कह रही थी तो उसकी दृष्टि कमलमित्र पर टिकी हुई थी, जिसके प्रभाव से वह अपने वश में न रह सका और उस पर उसके शब्दों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसकी बातें उसके कानों में पड़ीं ही नहीं, वह तो कामान्ध हो रहा था। उसे सदा से अधिक इस बात का विश्वास हो गया कि अनुशयनी के लावण्य में सब कुछ कर

डालने की शक्ति है। अतः जब अनुशयनी ने देखा कि कमलमित्र को उसके निश्चय से विरत करना संभव नहीं है, तो उसने उसकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली। इतना ही नहीं, भीतर से उसे प्रसन्नता भी हुई कि अच्छा हुआ जो इन्होंने मेरी बात नहीं मानी; क्योंकि वह स्वयं यह जानने के लिये अत्यन्त उत्सुक थी कि मेरी सुन्दरता का सचमुच मुनि पर प्रभाव पड़ता है या नहीं, यद्यपि उसके परिणाम के भय से वह काँप रही थी। हाय री नियति! जिस व्यक्ति को सौन्दर्य, कुतूहल, यौवन, अहङ्कार और मद सब ने इकट्ठे मिलकर हाथी के समान उन्मत्त बना दिया हो, उसे आत्म-संयम का धागा कहाँ तक वश में कर सकता है?

इसके पश्चात् उन दोनों प्रेमियों ने इस प्रकार एक दूसरे का चुम्बन किया जैसे दो यात्री वर्ष भर के लिये एक दूसरे से वियुक्त हो रहे हों। उन्हें क्या पता था कि यही उनका अन्तिम मिलन है। इसके पश्चात् वे उस वृद्ध मुनि को ढूँढ़ने के लिये साथ-साथ बन में गए। हाथ में हाथ मिलाए घूमते हुए वे ऐसे लगते थे, जैसे मनुष्य के रूप में कामदेव के दो बाण हों। जाते-जाते वे वन के मध्य में पहुँच गए, जहाँ अचानक उन्हें वृद्ध मुनि दिखाई पड़ गए। वे वृक्ष की भाँति निश्चल भाव से ध्यानावस्थित हो खड़े थे। उनके चारों ओर चींटों ने अपने ढूह बना दिए थे। उनकी दाढ़ी और जटा उनके सिर पर से लताजाल की भाँति पृथ्वी पर लटक रही थी और पत्तियों से ढक गई थी। उनके झुर्री पड़े हुए शरीर पर जीवित मरकत मणि के समान छिपकली का एक जोड़ा खेल रहा था। उनके दोनों विशाल नेत्र सामने की ओर खुले हुए थे और उनमें सभी कुछ प्रतिबिम्बित हो रहा था, परन्तु वे देखते कुछ भी नहीं थे। वे एक ऐसी

पहाड़ी झील के समान स्वच्छ, शान्त और गम्भीर थे, जिसमें सभी मछलियाँ सुप्त हों।

कमलमित्र और अनुशयनी ने चुपचाप थोड़ी देर उनकी ओर देखा, फिर आपस में एक दूसरे की ओर, और वे भय से काँप उठे, क्योंकि वे जानते थे कि यहाँ हम अपने प्राणों को दाँव पर रख रहे हैं। परन्तु जब कमलमित्र का चित्त इस प्रकार कुछ डगमगाने लगा तभी उसे उसके मित्र का व्यंग स्मरण हो आया और उसका मन क्रोध से भर गया। उसने अनुशयनी से कहा—"आगे बढ़ो, जिससे ये वृद्ध मुनि तुमको देखें और मैं उसका परिणाम देखूं।"

अनुशयनी उसकी आज्ञा मानकर, पत्तियों के ऊपर उन पत्तियों से भी हलके अपने पैर रखती हुई आगे बढ़ी और मुनि के समक्ष जा खड़ी हुई। और जब उसने देखा कि तब भी वे हिले डुले नहीं, तो वह उनके नेत्रों में झाँकने के लिये अपने पंजों के बल उचकी और अपने मन में कहा कि शायद ये मर गए हैं। उसने उनकी आँखों के भीतर झाँका तो वहाँ संकोच की मूर्ति सी अपनी ही दो मूर्तियों के अतिरिक्त और कुछ दिखाई न पड़ा। वे मूर्तियाँ मानो उससे कह रही थीं—"सावधान!" जब वह इस प्रकार अनिश्चितता के झूले में झूलती वहाँ खड़ी काँप रही थी, उस समय कमलमित्र हर्षोन्मत्त होकर उसे देख रहा था। उसने मन ही मन हँसकर कहा—"अवश्य ही यह वृद्ध मुनि अब जीवित नहीं है, अन्यथा अनुशयनी इसके नेत्रों के द्वार से इसके आत्मा तक पहुँच गई होती, चाहे वह पाताल लोक में ही क्यों न होता।"

इस प्रकार जब वे वहाँ प्रतीक्षा करते हुए खड़े रहे तो धीरे-धीरे उन

वृद्ध मुनि का ध्यान भंग हुआ, क्योंकि उन्हें अनुभव हुआ कि कोई वस्तु उनके ध्यान में विघ्न पहुँचा रही है। तब वे देखते क्या हैं कि अनुशयनी, सुषमामात्र-शेष सायंकालीन बाल-शशि के समान अथवा आकाश के रंग से रंजित निर्दोष स्फटिक के समान उनके सामने खड़ी है। तुरन्त अपने योगबल से उन्होंने सब वृत्तान्त जान लिया और उन्हें वास्तविक स्थिति का पता चल गया। उन्होंने मृग के समान करुणायुक्त किन्तु वज्र के समान भयंकर नेत्रों से उस चपल सौन्दर्य को देखा, तब तुरन्त ही उसके हृदय का साहस लुप्त हो गया और उसके घुटने शक्तिहीन हो गए, जिससे वह सिर लटकाए धरती पर इस प्रकार गिर पड़ी, जैसे कमल हवा के झोंके से टूट कर गिरता है।

परन्तु कमलमित्र ने झट आगे बढ़कर उसे अपनी बांहों में भर लिया। तब इस प्रकार खड़े हुए उन दोनों को उस वृद्ध मुनि ने शाप देते हुए धीरे-धीरे कहा—"अविनीत प्रणयि युगल ! जो सुन्दरता तुम्हारी इस धृष्टता का कारण बनी उसका उचित फल अब तुम्हें मिलेगा। पापियो ! अब तुम मर्त्यलोक में जाओ और वहाँ मनुष्य योनि में जन्म लेकर तब तक वियोग का दुःख भोगो, जब तक तुम्हारा पाप शोक की अग्नि में भस्म न हो जाय।"

विरह का दंड सुनकर वे दोनों शोकाकुल हो मुनि के चरणों पर गिर पड़े और उनसे विनती की कि कम से कम इस शाप-भोग और हमारे दुःखों के अन्त का एक समय निश्चित कर दीजिए। तब मुनि ने कहा कि जब तुममें से कोई एक, दूसरे का वधकर देगा, तब इस शाप का अन्त हो जायगा।

तब उन दोनों प्रेमियों ने दुःखी और निराश होकर मौनभाव से एक दूसरे को देखा। उस समय उन्होंने एक दूसरे के नेत्रों से मानो दुस्तर विरह-सागर की यात्रा में प्राण धारण के हेतु संबल के रूप में, परस्परानुचिन्तन के अमृत की गहरी घूंट पी और ऐसा करते हुए उन्होंने व्यर्थ ही मानो एक दूसरे से कहा—"मुझे स्मरण रखना।" फिर अकस्मात् वे बिजली की कौंध की भाँति अदृश्य हो कहीं अन्यत्र चले गए।

परन्तु कैलास पर आसीन महेश्वर ने, जिनकी दृष्टि संयोग से उसी दिशा में थी, उन्हें जाते हुए देखा और अपने योगबल से उन्होंने सम्पूर्ण वृत्तान्त जान लिया। तब उन्हें गन्धर्व को दिया हुआ अपना वरदान स्मरण हो आया और उन्होंने अपने मन में कहा—"जिस अनागत का मुझे पहले ही ज्ञान हो गया था वह अब वर्तमान बन गया है और अनुशयनी के नीले नेत्रों ने अनर्थ कर डाला है। परन्तु मैं उसके सुन्दर शरीर को उसके भाग्य के अधीन नहीं छोड़ूँगा, क्योंकि उसके भीतर स्वयं मेरा कुछ दिव्य अंश है। और अन्ततः कमलमित्र का भी इसमें विशेष दोष नहीं है, क्योंकि वह अनुशयनी के नेत्रों में प्रतिबिम्बित मेरे तेज से अन्धा हो गया था। अतः दोषी तो मैं हूँ, जो इस स्थिति के लिये उत्तरदायी हूँ और इसलिये इस दम्पति की सँभाल मुझे करनी ही होगी। इसके अतिरिक्त इनके चरित्र से मैं अपना मनोरंजन भी करना चाहता हूँ।"

इस प्रकार कुछ क्षण विचार करने के पश्चात् योगिराज शंकर ने एक कमल लेकर उसे सुदूर सागर में डाल दिया और वह एक द्वीप बन गया। उसे उन्होंने अपने योगबल से एक दिव्य लोक का रूप प्रदान किया

जिसके भविष्य में प्रकट होने वाले स्वरूप को केवल वे ही जानते थे। यह व्यवस्था पूरी करके उन्होंने घटना-चक्र को स्वयं अपनी गति से घूमने के लिये छोड़ दिया।

उधर जब दोनों प्रेमी अदृश्य हो गए तो वृद्ध मुनि पापनाशन वन में अकेले रह गए। उनके नेत्र-दर्पण में से उन दोनों की प्रतिमाएँ लुप्त हो गईं और एक विस्तृत सरोवर के ऊपर से जाती हुई मेघ-छाया की भाँति वे धीरे-धीरे उनके मन से भी निकल गईं और एक दम विस्मृत हो गईं।

— — —

रात्रि : शयन और स्वप्न

रात्रि : शयन और स्वप्न

१

अनुशयनी जब वन में से अदृश्य हो गई तो वह टूटते हुए तारे की भाँति आकर पृथ्वी पर गिरी और इन्दिरालय के राजा की प्रिय रानी के गर्भ में प्रविष्ट हो गई। फिर यथासमय उसने उसकी कन्या होकर मर्त्य जीवों की भाँति जन्म लिया। जब उसका जन्म हुआ, उस समय दीप-शिखा को लज्जित करनेवाली उसकी देह-दीप्ति से प्रसवगृह उद्भासित हो उठा। धात्रियाँ और दासियाँ उसे देखकर चकित रह गईं, क्योंकि उसकी आँखों की पलकों पर लम्बी काली बरौनियाँ ऐसी लग रही थीं, जैसे उदित होते हुए चन्द्र को छिपाने के लिये उसके नीचे वर्षाकाल के मेघ झुके हुए हों। फिर अचानक वे बरौनियाँ पर्दे की भाँति ऊपर उठीं और उनके नीचे से नीले रंग की बाढ़ सी आ गई, जो कर्पूर और चन्दन की नेत्रविषयीभूत सुगन्ध की भाँति उस प्रसवगृह में व्याप्त हो गई। उसने वहाँ खड़े हुए सभी लोगों की चेतना को अभिभूत कर लिया और वे सब मूर्च्छित से हो गए। पीठ के बल लेटकर आकाश को देखते हुए मनुष्यों की भाँति उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि वे आकाश के नीले रंग से आच्छादित हो गए हैं। उस समय उनका ऐहिक विवेक लुप्त हो गया, क्योंकि यद्यपि उन्हें इसका ज्ञान नहीं था, परन्तु वे चन्द्रशेखर भगवान के ही तेज की प्रतिच्छाया का दर्शन कर रहे थे।

इस प्रकार वे सब उस शिशु के नेत्रों पर दृष्टि लगाए शान्त भाव से

चारों ओर खड़े थे। अन्त में राजा और उसके मंत्रियों, वैद्यों तथा ज्योतिषियों ने दीर्घ निःश्वास लिया और वे आश्चर्य के साथ एक दूसरे को देखने लगे। तब प्रधान मंत्री ने कहा—"महाराज ! यह अद्‌भुत बात है, क्योंकि ये नेत्र शिशु के नहीं, प्रत्युत किसी ऋषि या देवता के नेत्र हैं। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह कन्या एक मर्त्य मानव कन्या मात्र नहीं, प्रत्युत कोई शापग्रस्त देवता या देवता का अंश है, जो अपने पूर्व जन्म में किए हुए पापों का फल भोगने के हेतु कुछ काल के लिये इस मर्त्यलोक में अवतीर्ण हुआ है। ऐसा प्रायः हुआ करता है। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि महाराज बड़े भाग्यशाली हैं, क्योंकि उस देवता ने महाराज को ही अपने अवतार के लिये माध्यम चुना है।"

सदा समयोचित वचन बोलनेवाले अपने मंत्री की यह बात सुनकर राजा अत्यन्त हर्षित हुआ। उसने असाधारण उल्लास के साथ अपनी कन्या का जन्मोत्सव मनाया और ब्राह्मणों तथा निर्धन व्यक्तियों को स्वर्ण और भूमि का दान दिया। तत्-पश्चात् नाम एवं नामकरण में विज्ञ अपने ज्योतिषियों और ब्राह्मण-मुनियों से परामर्श करके उसने अपनी कन्या का शुभ नाम 'श्री' रक्खा। उसने कहा—"इसके नेत्र कमल के समान हैं अथवा उस सरोवर के सदृश हैं जो खिले हुए कमलों से परिपूर्ण हो। और निस्सन्देह ये नेत्र सुन्दरता की देवी 'श्री' अर्थात् लक्ष्मी जी के नेत्रों की उस समय की शोभा की प्रतिच्छाया हैं, जब वे समुद्र से उत्पन्न होकर, जिस फेन से वे निर्मित थीं, उसी के द्वारा आन्दोलित नील कमल के पालने में लेटी हुई, समुद्र की आश्चर्यचकित तरंगों को, उन्हें लज्जित करने वाले तथा उनके रंग को हरनेवाले अपने नीले नेत्रों से देख रही थीं।"

उसके बाद समय का चक्र घूमने लगा, और वर्ष पर वर्ष अपनी समस्त ऋतुओं सहित एक दूसरे के पीछे इस प्रकार जाने लगे, जैसे मरुभूमि में यात्रियों के दल। और धीरे-धीरे राजा के कानों की जड़ के पास झुर्री पड़ी हुई त्वचा पर श्वेत केशों के रूप में उसकी वृद्धावस्था प्रकट हुई। इस बीच 'श्री' बड़ी होकर शैशवावस्था से किशोरावस्था में पहुँच गई और उसके पश्चात् यौवन का उदय हुआ। अनुदिन बढ़ते हुए चन्द्रमा के शृंगों की भाँति उसके अंग गोलाई धारण करने लगे और फिर पूर्ण आकार में बढ़कर परम सुन्दर गोल बिम्ब बन गए। वह मानों सचमुच लवण सागर का सार* बन गई, जो पीने वाले के हृदय में ऐसी अतृप्त तृष्णा उत्पन्न करता था, जिसे शान्त करने के लिये उसके नीले नयनों के सरोवर के जल की उत्कट अभिलाषा होती थी। अन्त में एक दिन ऐसा आया, जब राजा, अर्थात् उसके पिता ने उसे देखा तो सोचा कि अब यह फल पक गया और इसे तोड़कर खाने का समय आ गया है।

उसके पश्चात् राजा श्री की माता पट्टमहिषी मदिरेक्षणा से मिलने के लिये अन्तःपुर में गया। परन्तु जब रानी ने उसके आने का कारण जाना तो कहा—"आर्यपुत्र! यह सब व्यर्थ है, क्योंकि हमारी राजकुमारी पति शब्द तक को सुनना नहीं चाहती, विवाह की बात तो दूर है।" तब राजा ने कहा—"यह कैसी बात? कन्या विवाह से इनकार करे? यह तो वैसा ही है, जैसे खेत हल को अस्वीकार करे। क्या अब वह पूर्ण युवती नहीं हो गई है, और क्या युवती कन्या अविवाहित रहकर स्वयं अपने और अपने ज्ञाति जनों के लिये इहलोक और परलोक में अपयश का

*** १ - खारे समुद्र का सार, नमक; २—सुन्दरता का सार।**

कारण नहीं बनती ?" तब मदिरेक्षणा ने कहा—"तो आप स्वयं उससे बात कर देखिए और हो सके तो उसे विवाह के लिये तैयार कीजिए, क्योंकि उसने स्वयं मुझसे कहा है कि मेरे विवाह की बात स्वप्न में भी न सोची जाय।"

तब राजा ने स्वयं बात करने के लिये अपनी कन्या को बुला भेजा।

कुछ क्षणों के उपरान्त श्री हंस के समान मन्द गति से, और वायु के झोकों से इतस्ततः चालित पुष्प की भाँति लचकती हुई वहाँ आई। उसकी कटि तो इतनी पतली थी कि मुट्ठी में आ जाय, और उसके उन्नत उरोज सागर की स्फीत तरंग के समान गौरवयुक्त थे। अपने पिता को देख वह मुकुलित नयनों और खुले हुए होठों से शिशु की भाँति मुस्करा उठी। उसकी बरौनियों के जाल में से आर्द्र कमल के रंग की मनोहर आभा फूट कर बाहर निकल रही थी। उसकी क्षुद्रघंटिका मानो हर्ष के कारण बज रही थी, और उसके द्वारा शरीर पर धारण किए हुए जगमगाते रत्न मानों उसके नेत्रों की झिलमिल दीप्ति से ईर्ष्या के कारण क्षण-क्षण अपना रंग बदल रहे थे। उसे देखकर राजा को अभिमान, आश्चर्य और हर्ष हुआ और उसने अपने मन में हँसकर कहा—"विधाता का चातुर्य आश्चर्यजनक है, और स्त्री के लावण्य का रहस्य अज्ञेय है; क्योंकि यद्यपि अब मैं वृद्ध हो गया हूँ और इसका पिता हूँ, तथापि इसके सामने मैं अपने को वैसा ही अनुभव करता हूँ जैसे चक्रवर्ती राजा के सामने एक किंकर। इसे देखकर अवश्य ही कोई भी युवा पुरुष हर्ष और मोह से पागल हो जायगा। और क्या सचमुच विधाता ने इस मादक रूप को निष्प्रयोजन बनाया है? इसमें कोई सन्देह नहीं कि मानव देहधारियों में यह किसी भी पति के लिये

आदर्श पत्नी होगी।" फिर उसने श्री से कहा—"बेटी! अब तुम्हारा विवाह हो जाना उचित है, क्योंकि अविवाहित कन्या पिता के घर में निन्दा का कारण बनती है।"

श्री ने तुरन्त प्रतिवाद किया—"पिता जी, ऐसा मत कहिए। मुझे कुमारी जीवन बिताने और कुमारी ही मर जाने दीजिए, क्योंकि मैं विवाह नहीं करना चाहती।"

राजा ने कहा—"बेटी, यह तुम क्या कह रही हो? तुम्हारे जन्म का तो उद्देश्य ही पति है।" इस पर श्री ने अनुनयपूर्वक कहा—"मेरे लिये आप स्वप्न में भी पति की चिन्ता मत कीजिए। इसका एक कारण है। वह यह कि मैं अन्य कुमारियों से भिन्न हूँ।" यह सुनकर राजा हैरान हो गया। अपनी भौंहों के नीचे से उसने श्री की ओर देखा और मन में कहा—"अवश्य यह मेरी आत्मजा, यदि यह मेरी ही है तो, दूसरी कुमारियों के समान नहीं है। क्योंकि इसके जोड़ की रूपवती कुमारी कभी किसी ने देखी नहीं, न कभी किसी ने इसकी तरह किसी को विवाह से इनकार करते सुना। अथवा, क्या मेरे मंत्री की बात सत्य थी और यह मानव कन्या के रूप में कोई देवता है।"

इस प्रकार राजा समय-समय पर अपनी कन्या को समझाता और विवाह के लिये उससे आग्रह करता रहा। परन्तु अन्त में उसने समझ लिया कि उसे मनाने का प्रयत्न वैसा ही व्यर्थ है, जैसे सूत के धागे से हीरे को छेदना। अतः वह निराश होकर बोला—"निश्चय ही मैंने अपने पूर्व जन्म में अनेक भयंकर पाप किए थे, जिनके फलस्वरूप मुझे ऐसी कन्या मिली है, जिसका हठपूर्ण और रहस्यमय पतिद्वेष स्त्री-प्रकृति के विरुद्ध

तथा मेरे मोक्ष के मार्ग को अवरुद्ध करने वाला है।" इस पर श्री ने निवेदन किया—"पूज्य पिता जी, आप क्रोध न करें। मैं आपसे यह सच्ची बात बतलाती हूँ कि पति की कामना मैं भी करती हूँ, परन्तु केवल एक पति की; उसके अतिरिक्त किसी दूसरे की नहीं।" तब उसके पिता ने पूछा—"कौन है वह पति ?"

श्री ने विमुग्ध भाव से कहा—"यह तो मैं नहीं जानती, परन्तु वे कमल के देश से मुझे लेने के लिये आएँगे।"

राजा ने पूछा—"वह कमल का देश कहाँ है ?"

श्री ने उत्तर दिया—"मैं यह भी नहीं बतला सकती, परन्तु स्वप्न में मैंने आकाश से एक कमल को गिरते हुए देखा और यह आकाशवाणी सुनी—'उतावली मत करो, प्रतीक्षा करो, तुम्हारा पति कमल के देश से तुम्हारे पास आएगा; क्योंकि पूर्व जन्म में वह तुम्हारा पति था और तुम एक चिह्न द्वारा उसे पहिचान लोगी।" राजा ने फिर पूछा—"वह कौन सा चिह्न है ?" तब श्री ने कहा—"मैं यह नहीं बता सकूँगी, क्योंकि उसे मेरे और भगवान के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। परन्तु अब या तो आप मेरे विवाह का विचार छोड़ दीजिए, अथवा यदि संभव हो तो उस व्यक्ति का पता लगवाइए, जिसने कमल का देश देखा हो और जो एक राजकन्या के अनुरूप श्रेष्ठ कुल का हो। वही व्यक्ति मेरा पति होगा। क्योंकि मैं उसके अतिरिक्त किसी अन्य से विवाह नहीं करूँगी।"

यह सुनकर राजा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और वह मूकवत् श्री की ओर देखता बैठा रहा। उसने अपने मन में कहा—"बड़ी ही अद्भुत बात है यह। और मेरी इस रहस्यमयी कन्या का यह व्यवहार कुछ समझ में

नहीं आता। यह कमल का देश कौन सी बला है ? क्या वह एक बालिका का स्वप्नमात्र और कोरी कल्पना है, अथवा इसका स्वप्न सचमुच किसी पूर्व जन्म की ओर संकेत करता है ?" थोड़ी देर तक वह इस भाँति विचार करता रहा, फिर रानी से बोला—"कदाचित् जैसा यह कहती है वैसा ही करना ठीक होगा, अर्थात् ऐसे व्यक्ति का पता लगाना होगा, जिसने कमल का देश देखा हो। इसमें हानि ही क्या है ? क्योंकि यदि ऐसा व्यक्ति मिल ही जाय तो भी विचार करने के लिये बहुत समय रहेगा। इसके अतिरिक्त, हो सकता है इसी रीति से इसे पति मिल जाय, क्योंकि और किसी प्रकार से यह विवाह करेगी ही नहीं।"

तब उसने अपनी कन्या को जाने की आज्ञा दी और अन्तर्वेश्मिकों को बुलाकर कहा—"घोषकों को बुलाओ और उन्हें नगर में भेजकर डुग्गी पिटवाकर यह घोषणा करा दो कि जिस किसी उच्च कुल के पुरुष ने कमल का देश देखा हो, उसे मैं अपना आधा राज्य दूँगा और उससे अपनी राजकुमारी का विवाह कर दूँगा।" यह आज्ञा सुनकर कंचुकियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु वे तुरन्त चले गए और घोषकों को राजा की आज्ञा सुना दी।

—दो—

घोषकगण राजधानी की गली गली में जाकर डुग्गियों की चोट पर चिल्ला-चिल्लाकर घोषणा करने लगे—"जिस किसी उच्च कुल के पुरुष ने कमल का देश देखा हो, वह राजा के पास आए। राजा उसे अपना

आधा राज्य देंगे और उससे अपनी राजकुमारी का विवाह कर देंगे।'' इस घोषणा को सुनकर नगर के सभी नागरिक और परदेशी लोग आश्चर्य करने लगे। क्योंकि राजकुमारी की सुन्दरता की ख्याति तीनों लोकों में फैल गई थी। वे सब मधुमक्खियों की तरह भनभनाते हुए घोषकों के चारों ओर इकट्ठे होने और इधर से उधर दौड़ने लगे। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से पूछता था कि यह कमल का देश क्या है ? वह कहाँ है ? किसने उसे देखा है ? सभी लोग चिल्लाने और कोलाहल करने लगे और नगर की सभी सड़कों पर धूम मच गई। पास-पड़ोस के राज्यों तक भी यह समाचार फैल गया और तुरन्त ही मालव और दक्षिण तथा उत्तर के प्रत्येक भाग से तथा संसार के कोने-कोने से मनुष्यों के दल इन्दिरालय आने लगे। वणिकों, शिल्पियों और श्रमिकों ने अपने-अपने काम छोड़ दिए और वे भी झुंड के झुंड आ-आकर वहाँ खड़े हो गए और— 'कमल का देश क्या है ? वह कहाँ है ? वह कैसा है ?' आदि प्रश्न करने लगे। परन्तु कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, जिसने कमल के देश को देखने को कौन कहे, उसके विषय में कभी कुछ सुना भी हो। इस प्रकार प्रतिदिन घोषणा की जाने लगी। दिन भर नगर में घोषकों का चिल्लाना और डुग्गियों का पिटना सुनाई पड़ता था और रात भर, मानो दिन के कोलाहल से विरक्ति के कारण, नागरिकों की आँखों में नींद नहीं आती थी। परन्तु यह सब कुछ व्यर्थ हुआ, क्योंकि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला जो आकर कहता कि मैंने कमल का देश देखा है, मुझे पुरस्कार दो।

अन्त में नागरिकगण, राजा एव उसकी राजकुमारी के प्रति तथा कमल के देश एवं स्वयं अपने प्रति भी क्रुद्ध हो गए। यह देखकर वृद्ध

राजा चिन्ता से बीमार पड़ गया। उसने अपने मन में कहा—"मेरी सुन्दर कन्या जितनी रूपवती है उतनी ही धूर्त भी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विवाह के झगड़े से मुक्ति पाने और मुझे सन्तोष देने के लिये उसने यह चाल चली है और इस प्रकार वह हम सबको मूर्ख बना रही है। अब तो यह भय उपस्थित हो गया है कि कहीं मेरी प्रजा क्रुद्ध होकर विद्रोह न कर बैठे और कर देने से इनकार कर दे और मुझे सिंहासन से च्युत कर दे। धिक्कार है मेरी इस कन्या को, उसके नीले नेत्रों को और स्त्रियों की धूर्तता और कुटिलता को! क्या कमल का देश भी संसार में कोई देश है, जिसके विषय में मेरे राज्य भर में किसी ने कभी कुछ सुना तक नहीं, यद्यपि पृथ्वी के प्रत्येक भाग के व्यापारी और परदेशी मेरे राज्य में आते और रहते हैं?"

—तीन—

इधर कमलमित्र जब मुनि के शाप के कारण अनुशयनी से वियुक्त हो गया तो वह पृथ्वी पर आ गिरा और एक दूर देश में जाकर उसने एक सूर्यवंशी राजा के पुत्र के रूप में जन्म लिया। उसके पिता ने उसका नाम अमरसिंह रखा, क्योंकि ज्योतिषियों ने कहा कि यह बालक पृथ्वी पर सिंह की भाँति रहेगा और अपने आकाशचारी प्रतिद्वन्द्वी (सूर्य) के समान पृथ्वी पर विचरण करेगा। जब अमरसिंह बड़ा हुआ तो देश भर में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो मल्लयुद्ध, असि-चालन, अश्वारोहण तथा अन्य प्रकार के युद्धाभ्यास में उसकी बराबरी कर सके। इस कारण लोग उसके विषय में कहते थे कि यह तो प्रत्यक्ष क्षत्रिय धर्म का आत्मा

ही जान पड़ता है, जिसने अपने कर्म के अनुरूप शरीर धारण किया है। निश्चय ही यह कुमार का अवतार है जो राजा के शत्रुओं के विनाश के लिये पृथ्वी पर अवतरित हुआ है। स्त्रियाँ उसके चारों ओर इस प्रकार इकट्ठी होती थीं, जैसे मधु के पास मक्खियाँ, क्योंकि उसके ऊर्जस्वी यौवन ने उनके हृदयों को इस प्रकार विदलित कर दिया था, जैसे जंगली हाथी कमलवन को कुचल डालता है। उसकी आकृति के सौन्दर्य रूपी अमृत ने उनके प्राणों को उन्मत्त बना दिया था और वे शृंखलाबद्ध वन्दियों की भाँति उसके पीछे-पीछे फिरती थीं। परन्तु अमरसिंह उन पर हँसता था। इस विषय में वह स्वयं चन्द्रशेखर भगवान से भी आगे बढ़ गया, क्योंकि वह उन कामिनियों के सम्मोहनों के अनन्त सागर के प्राणघातक विष का निरन्तर पान करता रहता था, परन्तु उसके कंठ पर उसका कोई चिह्न नहीं था।

तब एक दिन उसके पिता ने उसे बुलाकर कहा—"देखो, मैंने अपने सबसे बलवान् शत्रु की कन्या से तुम्हारा विवाह निश्चित किया है, और इस प्रकार सामनीति के द्वारा हम परस्पर मित्र बन जायँगे।" अमरसिंह ने उत्तर दिया—"आप उसके लिये कोई दूसरा वर ढूँढ़िए, क्योंकि मैंने तो अपनी तेज तलवार से अपना विवाह कर लिया है।" इस पर उसका पिता रुष्ट हो गया और बोला—"यह कैसी मूर्खता है, दूसरा वर मैं कहाँ से लाऊँगा ?" परन्तु अमरसिंह ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसके पिता ने तीन बार अपने प्रश्न को दोहराया, तब कुछ देर के बाद अमरसिंह ने कहा—"वर मिले चाहे न मिले, परन्तु मैं अपने स्वप्न में देखी हुई स्त्री के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री से विवाह नहीं करूँगा।"

तब उसके पिता ने कहा—"कौन है फिर यह तुम्हारे स्वप्न की स्त्री ?" अमरसिंह ने उत्तर दिया—"यह मैं नहीं जानता, परन्तु हर तीसरे मास अमावास्या को मुझे स्वप्न में एक स्त्री के दर्शन होते हैं, जो श्वेत कमलों के सरोवर में चाँदी के डाँडों वाली चन्दन की नौका में विहार करती है। परन्तु वह कौन है, यह मैं नहीं कह सकता, मैं उसका मुँह कभी नहीं देख पाता, क्योंकि वह सदैव दूसरी ओर रहता है।"

तब उसका पिता हँसने और व्यंग करने लगा। परन्तु अमरसिंह ने उसकी व्यंग-धारा की उसी प्रकार उपेक्षा की, जैसे महेश्वर ने अपने सिर पर गिरने वाली गंगा की। तब उसके पिता ने कहा—"यह पागलपन अपने मन से दूर करो और विवाह के लिये तैयार हो जाओ, क्योंकि मैंने उसका सब प्रबन्ध कर दिया है और शुभ दिन भी नियत कर दिया है।" परन्तु अमरसिंह ने हँसकर कहा—"तो आप ही उससे विवाह कर लीजिए, क्योंकि मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि अपने स्वप्न की स्त्री के अतिरिक्त और किसी से मैं विवाह नहीं करूँगा।" तब उसका पिता बहुत क्रुद्ध हो गया और उसने अपने रक्षकों को बुलाकर राजकुमार को बन्दीगृह में डलवा दिया, और अपने मन में कहा—"जब तक यह मेरी आज्ञा मानने को तैयार न हो जाय, तब तक अपना स्वप्न लिए यहीं पड़ा रहे।" परन्तु अमरसिंह ने कारागार के अधिकारियों से कह-सुनकर उन्हें इस बात के लिये तैयार कर लिया कि वे उसे भाग जाने दें; क्योंकि उसकी प्रजा उसे उसके पिता से भी बढ़कर मानती थी। फिर एक दिन रात के समय वह अपने स्वप्न की रक्षा के लिये अपने युवराज पद को लात मार कर दूसरे देश में भाग गया।

उसके पश्चात् वह, उसे वापस ले जाने के लिये अपने पिता द्वारा अपने पीछे भेजे गए मनुष्यों की आँखों से बचता हुआ, एक नगर से दूसरे नगर और एक देश से दूसरे देश में फिरता रहा और अन्त में इन्द्रिरालय जा पहुँचा। वहाँ वह नगर के एक बदनाम मुहल्ले में जाकर कूपमंडूक की भाँति अज्ञातवास करने लगा। उसे अपने जीवन और अपने संबंधियों से घृणा हो गई। अपने शोक को भुलाने के लिये वह दुर्व्यसनों में डूब गया और रातदिन जुआड़ियों और चांडालों से घिरा रहने लगा। अपने साहस के भरोसे और अपने स्वप्न का संबल लेकर जीवन धारण करते हुए वह संपूर्ण संसार को तृणवत् समझने लगा। जो कुछ उसके पास था, वह सब थोड़ा-थोड़ा करके सूर्यताप से हिम के समान मानो उसकी उदारता से पिघल कर बह गया, अथवा उन जुआड़ियों के उदर-समुद्र में समा गया, जिनके बीच वह मुक्तहस्त होकर, अपने कुल-देव सूर्य भगवान् की भाँति बिना किसी प्रतिदान की इच्छा के, अपना द्रव्य वितरित कर देता था। अन्त में वह अत्यन्त दरिद्र हो गया और उसके तन पर केवल फटे-चीथड़े वस्त्र ही रह गए, जो दिनेश के तेज को छिपाने की निष्फल चेष्टा करने वाले बादलों के समान उसके शरीर के सौन्दर्य को छिपा तो क्या सकते थे, उलटे उसे बढ़ा रहे थे। उसके पास खाने-पीने को भी कुछ नहीं रह गया, इसलिये उसने शरीर त्याग करने का निश्चय कर लिया। उसने दीवार पर से अपनी तलवार उतार ली और उसे हाथ में लेकर वह अपनी कुटिया के बाहर निकल आया और सोचने लगा—"इस अपमान, उपेक्षा, भूख और जीवन के प्रति घृणा के साथ जीने की अपेक्षा तो मृत्यु ही अच्छी है। क्योंकि मृत्यु एक नए जीवन के प्रारम्भ के अतिरिक्त और

क्या है ? और वह जीवन चाहे जैसा हो, इस जीवन से बुरा तो नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त कौन जाने, इस जीवन में जिसका स्वप्न देखता हूँ वह दूसरे जीवन में ही मिल जाय, क्योंकि इस समय जो केवल स्वप्न में दिखाई पड़ती है, संभव है कि दूसरे जन्म में यथार्थ हो जाय और यह संभव है कि दूसरे में मैं उस कमल सरोवर का पता लगा सकूँ। इसलिये अब मैं नगर-प्राचीर के बाहर जाऊँगा और कोई निर्जन उद्यान ढूँढ़कर वहीं अपना सिर काटकर दुर्गादेवी पर बलि चढ़ा दूँगा।"

जब वह ऐसा निश्चय करके अपनी कुटिया के द्वार पर खड़ा होकर यह सोच रहा था कि अब किस ओर चलूँ, उसी समय उसे सौवीं बार डिंडिम का शब्द सुनाई पड़ा। ध्यान देने पर उसने घोषकों को चिल्ला-चिल्ला कर यह कहते हुए सुना—"जो कोई उच्च-कुल-जात पुरुष कमल के देश हो आया हो, वह राजा के पास आए; राजा उसे अपना आधा राज्य देंगे और अपनी राजकुमारी से उसका विवाह कर देंगे।" यह सुन कर अमरसिंह ने हँसकर अपने मन में कहा—"हैं ! क्या अभी तक ये ऐसे पुरुष की खोज में हैं, जिसने कमल का देश देखा हो ? और इन्होंने कैसे यह जाना कि इस प्रकार का कोई देश है और वह देखा जा सकता है ?"

फिर अचानक वह चौंक पड़ा, जैसे उसे साँप ने काट खाया हो और उसने तलवार पर अपना हाथ मारा और बोला—"हाँ ! किन्तु यदि किसी ने भी उस देश को नहीं देखा है और न कोई उसके विषय में कुछ जानता है, तो यदि कोई जाकर यह कहे कि मैंने उसे देखा है, तो कौन पता पा सकेगा कि यह सच बोलता है या झूठ ? क्योंकि उसके

कथन को सत्यता की कसौटी पर कैसे कसा जा सकता है, जब किसी ने उस देश को देखा ही नहीं? अतः मुझे राजा के पास जाकर यह कह देने में कौन सी बाधा है कि मैंने कमल का देश देखा है और अब मुझे पुरस्कार दीजिए? क्योंकि अब तो मैं मरने के लिये प्रस्तुत ही हूँ; और यदि राजा को मेरे छल का पता चल भी जाय तो उससे अधिक वह मेरा क्या बिगाड़ लेगा? परन्तु पहले तो उसे मेरे छल का पता चलेगा ही कैसे? क्योंकि यह तो कोई जानता नहीं कि वह देश कैसा है और कहाँ है। और इसके विपरीत यदि कहीं मेरी बात का विश्वास कर लिया गया, तो मैं न केवल इस राजा की देश-देशान्तर में विख्यात राजकुमारी को पा जाऊँगा, जिसकी मुझे तनिक भी परवाह नहीं है, अपितु उसके राज्य के सब साधन भी मुझे प्राप्त हो जाँयगे, जिनके द्वारा मैं एक सेना खड़ी कर लूँगा और जाकर अपने पिता को इस बात के लिये विवश कर दूँगा कि वे मुझे मेरे पद पर पुनः प्रतिष्ठित करें। अतः इसका परिणाम चाहे जो हो, मैं जीवित रहूँ या मारा जाऊँ, परन्तु प्रयत्न करके देखने में हानि ही क्या है? मेरी समझ में तो शुद्ध लाभ ही लाभ है, हानि कुछ भी नहीं।"

ऐसा निश्चय कर वह बिना किसी हिचक के उसी क्षण घोषकों के पास गया और उनसे बोला—"बन्द करो अपना यह डिंडिम-घोष और ले चलो मुझे राजा के पास, क्योंकि मैंने कमल का देश देखा है।" परन्तु जब घोषकों ने उसकी बात सुनी तो उन्हें अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। हर्षातिरेक के कारण उनके प्राण निकलने लगे; क्योंकि दिन भर लगातार चिल्लाते रहने के कारण वे थककर अधमरे तो पहले ही हो चुके

थे। वे उसे देखकर वर्षा ऋतु के प्रथम मेघ-दर्शन पर मोरों की भाँति नाचने लगे और एक अमूल्य रत्न की भाँति राजा के पास ले जाने के लिये उसे अपनी भुजाओं में इस प्रकार जकड़ लिया, जैसे वे डर रहे हों कि कहीं यह भाग न जाय। सूखे हुए वन में दावानल की भाँति नगर भर में यह समाचार फैल गया कि एक पुरुष मिल गया है, जिसने कमल का देश देखा है। प्रत्येक सड़क पर लोगों की भीड़ दौड़ पड़ी और एक विशाल जनसमूह ने आकर उसे घेर लिया और उसके साथ-साथ राजभवन तक गया। समुद्र के समान तरंगित यह विशाल जन-समुदाय राजप्रासाद के सामने जाकर खड़ा हो गया और रक्षकगण अमरसिंह को राजा के पास ले गए।

राजा ने जब यह समाचार सुना तो हर्ष से उसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गए। उसे जान पड़ा, जैसे अमरसिंह उसके नेत्रों के लिये अमृत की घूंट है, अथवा वह उसकी कामनाओं की सिद्धि का ही सदेह रूप है। और उसने अमरसिंह से कहा—"मुझे अनिर्वचनीय आनन्द देने वाले मेरे भावी जामाता, क्या सचमुच तुमने उस अभिशप्त कमल के देश को देखा है?" अमरसिंह ने निर्भयतापूर्वक उत्तर दिया—"हाँ, मैंने उसे देखा है और उसे अच्छी तरह जानता हूँ।" तब राजा तुरन्त बड़ी अधीरता के साथ राजकुमारी के आवास कक्ष की ओर दौड़ा और बोला—"विघ्नेश की कृपा से वर मिल गया है। एक राजपुत्र यहाँ उपस्थित है, जिसने कमल का देश देखा है। अतः अब अबिलंब विवाह के लिये तैयार हो जाओ।"

श्री ने कहा—"पूज्य पिता जी, इस विषय में कोई उतावली नहीं है। इसके अतिरिक्त, आप यह कैसे जानते हैं कि यह सच बोल रहा है,

अथवा यह कोई धूर्त है जो केवल मुझे, और आप का आधा राज्य प्राप्त करने के लिये झूठमूठ कभी न देखी हुई वस्तु को देखी हुई बतला रहा है ? क्योंकि संसार में ऐसे धूर्तों की कमी नहीं है, जो राजाओं के धन पर हाथ मारने के लिये उसी प्रकार घूमा करते हैं, जैसे सरोवर में मछलियों की ताक में बगले। इसलिये पहले उसे मेरे पास ले आइए और मैं उसकी परीक्षा कर लूँ। उसके पश्चात् फिर विचार किया जायगा कि विवाह की तैयारी का समय आ गया है या नहीं।"

राजा ने कहा—"अच्छी बात है।" और उसने अमरसिंह को बुलवाया और राजकुमारी के समक्ष उपस्थित कर दिया।

राजकुमारी ने उसे ध्यान से देखा—वह हाथ में तलवार लिए खड़ा था। लम्बा शरीर, सिंह की सी क्षीण कटि, वृषभ के समान कन्धे, लम्बी भुजाएँ, और राजाओं के सभी लक्षण उसमें विद्यमान थे। उसके चीथड़ों और उसमें से उसकी उघड़ी देह को देखकर तो उसकी प्रवृत्ति उसका तिरस्कार करने की हुई, परन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी वह ऐसा कर नहीं सकी, और अपनी इच्छा के विपरीत उसने अपने को उसकी ओर खिंची हुई अनुभव किया; क्योंकि भीतर से उसका हृदय उसे देखकर आन्दोलित हो उठा और उसके भूले हुए पूर्वजन्म की धुँधली स्मृति उसके आत्मा को मथने एवं उसके अन्तःकरण की गहराइयों से ऊपर आने का प्रयत्न करने लगी। वह चुपचाप खड़ी उसे निहारती रही, परन्तु उसके नेत्र उसी की ओर होने पर भी वह उसे देख नहीं रही थी। उसकी स्थिति ऐसे व्यक्ति के समान हो रही थी, जो अपने स्मृति-मन्दिर में ध्वनित होने वाले, उत्कंठा एवं अनुरागपूर्ण औत्सुक्य को जगाने वाले चिरविस्मृत

कंठस्वर को ध्यान से सुन रहा हो। जब वह उसकी ओर देख रही थी, उस समय उसके संशयपूर्ण अद्भुत नेत्रों से नीली ज्योति की एक धारा निकल कर उसे (अमरसिंह को) आप्लावित कर रही थी।

इधर अमरसिंह की यह दशा हुई कि जब उसने श्री को देखा तो सम्पूर्ण संसार उसके नेत्रों के सामने से अदृश्य हो गया—जैसे नीले रंग की राशि में खो गया। श्री की दृष्टि के आघात से वह इस प्रकार तिलमिला उठा, जैसे किसी ने उसके ऊपर निष्ठुरतापूर्वक दंड-प्रहार किया हो। उसका देश और काल संबंधी ज्ञान नष्ट हो गया। उसका अन्तःकरण नीले रंग में डूब गया। कभी तो वह हँसता और कभी रोने लगता। वह वेदना से व्यथित होकर हाँफने लगा; क्योंकि श्री के अर्धस्मृत लोचनों के दर्शन ने उसके हृदय को जैसे लोहे की पट्टी से कसकर जकड़ दिया और उसकी गति अवरुद्ध कर दी। उस समय उसके नेत्रों के सामने कमल सरोवर में विहार करने वाली स्वप्न-सुन्दरी आ उपस्थित हुई और उसने पहिचान लिया कि श्री वही स्वप्न-सुन्दरी है।

इस प्रकार वे दोनों भित्तिलिखित चित्रों के समान एक दूसरे को निहारते हुए और स्वप्न की छायामूर्तियों की भाँति अदृष्ट के अन्धकार में खोई हुई स्मृति को ढूँढने का विफल प्रयत्न करते हुए वहाँ खड़े रहे। तब कुछ क्षणों के उपरान्त श्री आत्मस्थ हुई और उसने धीरे-धीरे कहा—"तो तुमने कमल का देश देखा है? तो फिर उसकी विशेषताएँ बतलाओ और यह भी बतलाओ कि तुम वहाँ किस प्रकार पहुँचे?"

परन्तु अमरसिंह हकलाने और हिचकिचाने लगा, क्योंकि श्री के नेत्रों ने उसकी बुद्धि हर ली थी। और वह उन नेत्रों के सामने रहते कुछ सोच

नहीं पाता था। उसका संपूर्ण साहस लुप्त हो गया और उसका स्थान भीरुता ने ले लिया। उसकी वाणी उसके वश में नहीं रह गई। वह काँपते हुए स्वर से कुछ बोला तो, परन्तु उसे यह ज्ञान नहीं था कि मैं क्या कह रहा हूँ। उसका कंठस्वर उसके अपने ही कानों में किसी अन्य व्यक्ति का-सा लग रहा था। उसने कहा—"देवि ! मैं नहीं जानता कि मैं वहाँ कैसे पहुँचा और जंगलों, मरुस्थलों और अगम ऊँचाई वाले पर्वतों में कितने समय तक भटकता रहा, फिर मैं एक ऐसे देश में पहुँचा, जो पता नहीं कहाँ था और जिसे पता नहीं क्यों लोग कमल का देश कहते थे।"

उसकी इस प्रकार की बातें सुनकर श्री का मोह भंग हो गया, वह मानो स्वप्न से जाग उठी और उसे अपने सामने केवल एक शीर्ण वस्त्र-धारी राजपुत्र रह गया जो उसके सामने लज्जित भाव से अटक-अटक कर अपनी कहानी सुना रहा था और बड़ी चालाकी के साथ झूठ बोलकर भी अपनी धूर्तता को जमा नहीं पा रहा था। इस कारण वह लज्जित हो गई और उसे अपने ही ऊपर क्रोध आ गया। उसकी बात सुनते-सुनते अचानक वह ठठाकर हँस पड़ी और बोली—"सुनो, सुनो जरा इस उच्च कुलावतंस वीर पुरुष की बात ! सुन लो इसकी कमल देश की गढ़न्त कहानी ! इसे पता नहीं यह कहाँ गया और यह नहीं जानता कि इसने क्या किया; इसने अथ से आरम्भ किया और इति पर समाप्त कर दिया।" इस प्रकार श्री तो उसका उपहास और उस पर व्यंग कर रही थी, परन्तु अमरसिंह उसके सामने जैसे मूर्च्छित के समान खड़ा था। उसे केवल उसके शब्दों का संगीतमय स्वर सुनाई पड़ रहा था और उसके घृणासूचक नेत्रों की ज्वाला के सामने वह भय से सिकुड़ा जा रहा था।

तब अनाचक श्री ने उसके मुँह के पास अपनी ताली बजाकर उससे कहा—"सुनते हो, या जैसे तुम गूंगे हो, उसी प्रकार बहरे भी हो ? तुम राजपुत्र हो और फिर भी तुममें इतना साहस नहीं है कि तुम अपनी इस वंचकता को अन्त तक निबाह सको ? आश्चर्य तो यह है कि ऐसे (कुटिल) आत्मा के लिये विधाता ने ऐसा (सुन्दर) शरीर चुना ।" फिर वह राजा की ओर घूमकर कहने लगी —"पूज्य पिता जी ! मैंने जो कहा था वही हुआ । आप देख रहे हैं न, यह पक्का धूर्त है । इसलिये आप इसे बाहर निकलवा दीजिए । परन्तु इसे कोई कष्ट मत दीजिए; क्योंकि यह धूर्त होने पर भी रूपवान् धूर्त है और दंड और प्रहार से अधिक घृणा और उपहास का पात्र है ।"

तब राजा ने अपने रक्षकों से कहा—"इस धूर्त को बाहर ले जाओ और ढकेल कर सड़क पर कर दो ।" यह सुनते ही रक्षकों ने अमरसिंह को पकड़ लिया और उसने कोई विरोध नहीं किया । फिर उस पर लात-घूँसों की वर्षा करते हुए वे उसे सड़क पर डाल आए । उसके पश्चात् तुरन्त ही घोषकगण पहले की भाँति नगर भर में चारों ओर घूम-घूमकर डुग्गियाँ पीट-पीटकर चिल्लाने लगे—"जिस किसी उच्च कुल के पुरुष ने कमल का देश देखा हो वह राजा के पास आए । राजा उसे अपना आधा राज्य देंगे और उससे अपनी राजकुमारी का विवाह कर देंगे ।"

—चार—

अमरसिंह मृत प्राय अवस्था में सड़क पर खड़ा था । उसके शरीर पर घाव ही घाव थे और उसकी चेतना लुप्त हो गई थी। उसके

चारों ओर लोगों की भीड़ इकट्ठा हो गई। लोग उसकी ओर उँगली उठा-उठाकर दिखाते और उसे मुँह चिढ़ाते थे और (बीच-बीच में) उसे लात और घूँसे भी लगाते थे। उन नीचों के बीच घिरकर उसकी दशा ऐसी हो रही थी, जैसे अहेरियों से घातक चोट खाए हुए किसी कृष्णसार मृग को किलकारी मारते हुए बन्दरों के समूह ने घेर लिया हो। इसी प्रकार सन्ध्या हो गई और तब उसे वहीं पड़ा छोड़कर चिढ़ानेवालों की भीड़ धीरे-धीरे छँटने लगी और सभी लोग अपने-अपने घर चले गए। थोड़ी देर के बाद उसकी चेतना लौट आई और वह किसी प्रकार उठकर खड़ा हो गया और लड़खड़ाते हुए वहाँ से चल दिया। चलते-चलते वह एक निर्जन स्थान में एक सरोवर के पास पहुँचा और उसके तट पर लेटकर विश्राम करने लगा। यद्यपि उसका शरीर जर्जर हो गया था, तथापि उसे शारीरिक व्यथा का अनुभव एक दम नहीं हो रहा था। परन्तु उसकी आँखें श्री के तीव्र घृणा से भरे हुए नेत्रों के नीले तेज से चौंधियाई हुई थीं और उसकी हँसी और उसका कंठ-स्वर उसके कानों में गूँज रहा था तथा वह अपने हृदय में अत्यन्त लज्जित था। वह बहुत देर तक इसी प्रकार पड़ा रहा। उसकी आँखों के सामने श्री की मूर्ति नाच रही थी, जो सर्पदंश के समान उसके हृदय में चुभ रही थी, परन्तु साथ ही उसे चन्दन के समान शीतलता भी प्रदान कर रही थी। इतने में चन्द्रोदय हो गया।

तब वह अचानक उठ बैठा और इधर-उधर देखने लगा। उसने सरोवर को, वृक्षों को और जल में पड़ते हुए चन्द्रमा के प्रतिबिंब को देखा। तब उसे ज्ञात हुआ कि मैं कहाँ आ गया हूँ, और जो कुछ अब तक हुआ था, वह भी उसे स्मरण हो आया। तब उसने दीर्घ निःश्वास

लेकर अपने मन में कहा—"मैं महा हतभाग्य हूँ ! एक बेईमान जुआड़ी की भाँति मैंने पाँसा फेंका और दाँव हार गया। न मुझे राज्य प्राप्त हुआ, न राजकुमारी ही मिली, केवल मार और लज्जा ही हाथ आई। हाय ! मेरे पूर्व जन्म के पापों के घोर परिणाम-स्वरूप मेरी स्वप्न-सुंदरी मुझे मिलते ही फिर हाथों से निकल गई। इसलिये अब तो मेरे सामने केवल यही एक मार्ग रह गया है कि मैं शीघ्र से शीघ्र वही कर डालूँ जो राजभवन में जाने के पहले करने को उद्यत था, अर्थात् मैं सचमुच मृत्यु का आलिंगन करूँ। क्योंकि यदि स्वप्न-सुंदरी को पाने के पहले मेरा जीवन असह्य हो गया था, तो अब तो वह पहले से भी अधिक असह्य हो गया है; कारण कि उसे पाकर भी मैं उसकी दृष्टि में घृणा का पात्र हो गया हूँ, जो सैकड़ों मृत्युओं से भी बढ़कर भयंकर है।"

तब उसने अपनी तलवार उठा ली, उसकी धार पर हाथ फेरा और उसे अपने गले पर रक्खा। परन्तु तलवार ने उसकी त्वचा का स्पर्श ही किया था कि उसे रात के सन्नाटे में उस प्रहरी का शब्द सुनाई पड़ा, जो नगर-प्राचीर पर पहरा देता और गाता हुआ फेरे लगा रहा था। वह कह रहा था—"जो कोई उच्च कुल का पुरुष कमल के देश हो आया हो, वह राजा के पास आए। राजा उसे अपना आधा राज्य देंगे और उसके साथ अपनी राजकुमारी का विवाह कर देंगे।" यह सुनते ही तलवार उसके हाथ से छूट पड़ी और वह उछल कर खड़ा हो गया और बोला—"हैं ! वह उस पुरुष की पत्नी बनेगी, जिसने कमल का देश देखा हो, और मैं एक सूर्य-कुल का राजपुत्र होकर भी यहाँ इस चन्द्रिका-मंडित सरोवर के तट पर खड़ा मृत्यु का स्वप्न देख रहा हूँ, जब कि कमल के देश का

अब भी पता नहीं है । अब तो चाहे जो हो, मैं उस कमल के देश का पता अवश्य लगाऊँगा और वहाँ से लौटकर उससे कहूँगा कि अब तुम मेरी हो; पहले की भाँति झूठमूठ नहीं, प्रत्युत एक प्रत्यक्षदर्शी होने के अधिकार से ।''

फिर तुरन्त उसने अपनी तलवार उठा ली और उसे ऊपर हवा में उछाल दिया । तलवार चन्द्रमा के प्रकाश में चमकती और चक्र की भाँति घूमती हुई भूमि पर गिर पड़ी । तब अमरसिंह ने उसे उठा लिया और तुरन्त नगर के बाहर निकलकर अंगुलि-निर्देशवत् तलवार की धार द्वारा संकेतित दिशा में चल पड़ा ।

—पाँच—

जिस प्रकार भौंरा एक फूल से दूसरे फूल पर मँडराता फिरता है, उसी प्रकार वह नगर-नगर, देश-देश फिरता रहा । वह उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम चारों दिशाओं में घूमा । यहाँ तक कि आठों दिक्पाल (आठों दिशाओं के गज) उसके इतने परिचित हो गए कि उसे देखते ही पहिचान जायँ । परन्तु उसे कहीं कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, जो उसे कमल के देश का मार्ग बतलाए, या जिसने कभी उस देश का नाम ही सुना हो । इस बीच कई ग्रीष्म ऋतुएँ आईं और उसे अवें की भाँति तपा गईं; अनेकों शीत ऋतुओं ने आकर उसकी नाड़ियों का रक्त जमा दिया; और वर्षा ऋतुएँ उन्मत्त गज के समान गरज-गरज कर उसके सिर पर बरसती चली गईं । अन्त में उसने अपने मन में कहा— ''तीन बार छहों ऋतुएँ आईं और चली गईं और मैं बराबर ढूँढता ही रहा, परन्तु कमल के देश का मार्ग अब भी पहले की ही भाँति अज्ञात

है। और यदि संसार में ऐसा कोई देश सचमुच है, तो निस्सन्देह उसे केवल आकाश में उड़ने वाले पक्षी ही जान सकते हैं। इसलिये अब मैं मनुष्यों की बस्ती को छोड़कर महावन में प्रवेश करूँगा, क्योंकि इसके अतिरिक्त और किसी उपाय से मेरे लिये कदापि उस देश का पता लगाना संभव नहीं है, जिसका किसी मनुष्य ने कभी नाम भी नहीं सुना।''

यह निश्चय करके वह जंगल में गया और दक्षिण दिशा की ओर मुड़कर आगे बढ़ता गया। वह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता, वृक्ष अधिक ऊँचे और घने मिलते जाते थे—इतने घने कि सूर्य का प्रकाश भी उनके भीतर होकर नहीं आ सकता था। अन्त में एक दिन ऐसा आया, जब सामने देखने पर उसे काल की दाढ़ के समान केवल घोर अन्धकार ही दिखाई पड़ने लगा। जब उसने पीछे फिर कर देखा तो सन्ध्या का झिलमिल प्रकाश वहाँ से बहुत दूर दिखाई पड़ा, जैसे वह उसके साथ जाने से डर रहा हो। इस प्रकार जब वह तलवार की नोक से अपना मार्ग टटोलता हुआ धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था तो अचानक एक दूसरी आकृति अपनी लंबी लाल जीभ उसकी ओर निकाले हुए उसको घूरने लगी। अमरसिंह चौंक कर पीछे हट गया, तब अपने सामने उसे एक कन्दाहारी वैरागी दिखाई पड़ा। वह वल्कल धारण किए हुए था, उसके लंबी-लंबी जटाएँ थीं, और उसके नख पक्षियों के चंगुल के समान थे। हाथ-पैर उसके नंगे थे और उसकी त्वचा हाथी के पैरों की त्वचा के समान थी।

अमरसिंह ने उससे कहा—''बाबा, आप यहाँ क्या कर रहे हैं और अपनी जिह्वा मेरी ओर क्यों निकाले हुए हैं?'' वैरागी ने उत्तर दिया—''बेटा, तू यहाँ इस जंगल में क्या कर रहा है जहाँ वृक्षों और राक्षसों के

अतिरिक्त और कुछ नहीं है और जो महादेव की जटा का पार्थिव रूप और उसी के समान घोर अन्धकारमय है ?'' अमरसिंह ने कहा—''मैं एक राजपुत्र हूँ। अपने संबंधियों से मुझसे झगड़ा हो गया है और मैं कमल के देश की खोज में निकला हूँ।'' वैरागी ने कहा—''बहुत कम लोग ऐसे हैं जो कमल के देश का पता लगाना चाहते हैं; उनसे भी कम लोग उसे ढूँढ पाते हैं; और उनसे भी कम ऐसे लोग हैं जो उसे पाकर फिर वापस लौट आते हैं।'' अमरसिंह ने आश्चर्य में आकर कहा—''तो क्या आप उस कमल के देश को जानते हैं ? तो बतलाइए, मैं कैसे वहाँ पहुँच सकता हूँ ?'' वैरागी हँसा और बोला—''हः हः ! तू तो प्रश्न का उत्तर न देकर उलटे मुझसे ही प्रश्न करता है, परन्तु मैं बदले में कुछ लिए बिना कुछ भी नहीं देता। याद रख, मैं भी अपने जीवन भर एक नहीं तीन-तीन मार्ग ढूँढता रहा हूँ, और तू मेरे तीनों मार्ग मुझे बतला दे तो मैं भी तुझे तेरा मार्ग बतला दूँगा।''

अमरसिंह ने कहा—''तीन के बदले में एक, यह भी कोई सौदा है ? फिर भी बतलाइए, आपके कौन से मार्ग खो गए हैं ?'' वैरागी ने कहा—''मैंने अपने जीवन भर तीन मार्ग पाने का प्रयत्न किया है—संसार का मार्ग, स्त्री का मार्ग और मोक्ष का मार्ग। परन्तु इनमें से एक का भी पता मुझे आज तक नहीं मिला। यह बड़ी अद्भुत बात है। क्योंकि जो वस्तु बहुजन का स्वाभाविक लक्षण हो वह बहुत ही सामान्य होनी चाहिए। और फिर जो वस्तु सामान्य हो वह सबकी दृष्टि से ओझल कैसे रह सकती है ? अच्छा, तो तू मुझे संसार का मार्ग बता और बदले में मैं तेरे कमल देश के मार्ग का तृतीयांश बता दूँगा।''

अमरसिंह ने कहा—"आप तो बड़ा जटिल प्रश्न करते हैं। फिर भी श्री के नीले नयनों के नाम पर और अपना मार्ग जानने के निमित्त मैं आपको उत्तर दूँगा। देखिए, संसार का मार्ग यह है। प्राचीन काल में किसी समय गंगा के तट पर एक पुराना और जनशून्य शिवालय था। वर्षा ऋतु में एक रात एक वृद्धा तापसी तूफान से अपनी रक्षा करने के लिये उस शिवालय में गई। उसके बाद ही एक उल्लू उसी उद्देश्य से उसमें पहुँचा। उस शिवालय की छत में बहुत से चमगादर रहते थे, जो मन्दिर छोड़कर बाहर कभी नहीं जाते थे। चमगादरों ने उल्लू को देख कर बुढ़िया से कहा—'तू कौन है और यह कौन सा प्राणी है?' उस तापसी ने कहा—'मैं सरस्वती देवी हूँ और यह मेरा वाहन मयूर है।' तूफान बन्द हो जाने पर वह धूर्त बुढ़िया तो चली गई, परन्तु उल्लू उस मन्दिर को रहने के लिये बहुत अच्छी जगह जान प्रसन्न हुआ और वहीं रह गया। कुछ वर्षों के उपरान्त ऐसा हुआ कि एक दिन सचमुच एक मोर उस शिवालय में आया। तब चमगादरों ने उससे पूछा—'तुम कौन से प्राणी हो?' मोर ने उत्तर दिया—'मैं मोर हूँ।' तब चमगादरों ने कहा—'क्या मूर्खता की बात करता है? चल निकल यहाँ से, धूर्त कहीं का।' मोर ने कहा—'मैं मोर हूँ, मोर का बेटा हूँ और मेरी जाति में सरस्वती देवी का वाहन पद आनुवंशिक होता है।' चमगादरों ने कहा—'तू झूठा है, और झूठे का बेटा है। क्या तू स्वयं सरस्वती देवी से भी अधिक जानता है?' उन्होंने मोर को मन्दिर के बाहर निकाल दिया और पहले की भाँति उल्लू की पूजा करने लगे।"

तब वैरागी ने कहा—"राजपुत्र, तूने मेरी आँखें खोल दीं। अब

मैं तुझे तेरे मार्ग का थोड़ा सा अंश बताता हूँ।" यह कहकर वह धरती पर लेट गया और अचानक साधु का वेष त्याग नेवला बन गया और अमरसिंह की ओर अपनी लाल लंबी जीभ निकाली। फिर वह एक बिल के मार्ग से धरती में प्रविष्ट हो अदृश्य हो गया। और जब अमरसिंह उस बिल का निरीक्षण करने के लिये नीचे झुका तो अपने पार्श्व में फिर उस वैरागी को उसके पूर्व रूप में देखा। अन्तर केवल इतना था कि उसकी जीभ नेवले की थी, जिसे वह निरन्तर लपलपा रहा था। तब अमरसिंह ने क्रुद्ध होकर कहा—"यह नेवले की माया कैसी है, और तुम अपनी जीभ क्यों लपलपा रहे हो ?" वैरागी ने कहा—"हो! हो! मैंने एक मार्ग के बदले में तुझे एक मार्ग बतलाया और एक पहेली के बदले में दूसरी पहेली बतलायी है। अब तू मुझे स्त्री का मार्ग बतला तो मैं तेरे मार्ग का दूसरा तृतीयांश बतलाऊँ।"

अमरसिंह ने अपने मन में कहा—"निश्चय ही यह वैरागी नहीं, कोई दुष्ट राक्षस है, जो केवल मुझे छलना चाहता है। परन्तु अपना मार्ग जानने के लिये और श्री के नयनों की नीली ज्योति के नाम पर मैं इसे उत्तर दूँगा।" अतः उसने वैरागी से कहा—"देखो, स्त्री का मार्ग यह है। बहुत दिन हुए, विन्ध्यवन में एक वृद्ध ऋषि रहते थे। देवों को उनके तप से ईर्ष्या हुई और उसमें विघ्न डालने के लिये उन्होंने स्वर्ग की एक अप्सरा को भेजा। तब वे वृद्ध ऋषि उसकी सुन्दरता पर मोहित होकर उसके प्रलोभन में फँस गए और उससे उनके एक कन्या उत्पन्न हुई। परन्तु पीछे अपने पतन पर उन्हें पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने एक लुकाठी (जलती लकड़ी) से अपनी आँखें दाग लीं और कहा—'मेरे नेत्रो, तुम्हीं

मेरे इस क्षणिक मोह के कारण हुए, इसलिये तुम नष्ट हो जाओ।' इस प्रकार वे अन्धे हो गए। तब उनकी कन्या अकेले अपने उस वृद्ध अन्धे पिता के साथ उस वन में रहकर बड़ी हुई। वह तीनों लोकों में सब स्त्रियों से बढ़कर सुन्दर थी। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि कामदेव उसे देख पाता तो वह रति और प्रीति को उसकी दासियाँ समझकर उन्हें तुरन्त त्याग देता। वह वल्कल वस्त्र धारण करती थी, और दर्पण के नाम पर उसके पास केवल वन के सरोवर थे। एक दिन एक कौआ जो नगरों से परिचित था, उसके पास आया और बोला – 'तुम यहाँ क्यों रहती हो, जहाँ इस बूढ़े अन्धे बाप के सिवा तुम्हारा कोई साथी नहीं है ? तुम नगरों में जाकर अपना दर्शन दो तो मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, पृथ्वी के समस्त राजागण अपना राज्य त्याग देंगे और भ्रमरों की भाँति तुम्हारे पीछे-पीछे फिरेंगे।' इस पर उस ऋषि-कन्या ने कहा—'और तब कौन लाएगा मेरे पिता के लिये यज्ञ की समिधा तथा उनके हवि की खीर पकाने के लिये पानी ?' यह कहकर उसने कौए को उड़ा दिया और वन में रह कर वह अपने पिता की सेवा करती हुई जीवन-यापन करने लगी। अन्त में वह वन में ही बूढ़ी होकर मर भी गई। किसी पुरुष ने कभी उसका मुँह नहीं देखा।"

तब वैरागी ने कहा—"मूर्ख राजपुत्र, मैंने तुझसे स्त्री का मार्ग पूछा था तो तूने बतला दिया मुक्ति का मार्ग।" तब अमरसिंह ने कहा—"हे अभागे कन्दाहारी ! सृष्टि के आदि से प्रत्येक स्त्री ने सदैव दूसरे के लिये त्याग किया है। ऐसा न करती तो वह स्त्री ही न होती, क्योंकि स्त्री जाति मात्र का यही स्वभाव है।" वैरागी ने कहा--"अब मैं तेरे मार्ग

का दूसरा तृतीयांश बतलाता हूँ।" इसके अनन्तर अमरसिंह के देखते-देखते अचानक वह कपट-वैरागी चमगादर बन गया। उसने फिर उसकी ओर जीभ लपलपाई और उसके पश्चात् वह वृक्षों के बीच उड़ गया। अमरसिंह ने अपने मन में कहा—"निस्सन्देह यह वैरागी नहीं, राक्षसों का राजा है। तथापि यदि वह फिर आएगा तो उसे मेरा मार्ग बतलाना ही पड़ेगा, अन्यथा उसके लिए बहुत बुरा होगा।"

अचानक फिर उसने वैरागी को अपने पास खड़े होकर पहले की भाँति अपनी ओर जीभ निकाले देखा। उसने अमरसिंह से कहा—"अब तुझे केवल मोक्ष का मार्ग बतलाना रह गया है। उसके बाद तेरा अपना मार्ग तेरे सामने स्पष्ट हो जायगा।"

अमरसिंह ने कहा—"तू केवल एक वृद्ध राक्षस है। फिर भी मैं श्री के नीले नयनों के नाम पर और अपना मार्ग जानने के निमित्त तुझे उत्तर दूँगा। देख, मोक्ष का मार्ग यह है। प्राचीन काल में एक सूर्यवंशी राजा था। वह अत्यन्त वृद्ध हो गया था और उसके केश हिमालय के सर्वोच्च शिखर के समान श्वेत हो गए थे। एक दिन उसने अपने राज-प्रासाद की खिड़की से बाहर झाँका तो सड़क पर एक बालक को एक खिलौने की गाड़ी अपने पीछे-पीछे खींचते हुए देखा। गाड़ी गिर पड़ी और टूट गई और वह बालक उस टूटे खिलौने के लिये रोने लगा। नियति का चक्र ऐसा कि बहुत दिन पहले जब वह वृद्ध राजा स्वयं एक बालक था तो संयोग से उसके साथ भी ठीक यही घटना घटी थी। जब वह उस बालक को देख रहा था, उस समय अचानक उसके बीते वर्षों का व्यवधान उसके सामने से नष्ट हो गया और उसने चित्र के समान अपना

ही बालक रूप अपने सामने देखा। फिर शोक-संतप्त होकर और जीवन की पुनरावृत्ति की अतृप्त अभिलाषा मन में लेकर उसने कहा—'हे महेश्वर, मुझे मेरा यह जीवन पुनः प्रदान कीजिए।' तब अचानक महेश्वर उसके सम्मुख प्रकट हो गए और हँसकर बोले—'तू अपने पूर्व जन्मों को स्मरण कर।' तब अचानक उस वृद्ध राजा की स्मृति जाग उठी और अतीत के अन्धकार में से उसके सामने एक-एक कर उसके समस्त पूर्व जन्मों की पूरी परम्परा आ उपस्थित हुई। फिर महेश्वर ने कहा—'देख, निन्यानबे जन्मों में निन्यानबे बार तूने मुझसे यही प्रार्थना की है और अब यह तेरा सौवाँ जन्म है। और प्रत्येक बार मैंने तेरी इच्छा पूर्ण की, परन्तु उसका कोई फल नहीं हुआ, क्योंकि प्रत्येक बार तू भूल गया और अपने यौवन का मूल्य तुझे वृद्ध होने के बाद ही समझ में आया।' तब उस वृद्ध राजा ने कहा—'तो मुझे मुक्ति किस प्रकार प्राप्त हो सकती है?' महेश्वर ने कहा—'यह काल पर नहीं, प्रत्युत ज्ञान पर निर्भर है। ज्ञान से मुक्ति एक क्षण में भी प्राप्त हो सकती है और बिना ज्ञान के दस हजार वर्ष में भी नहीं प्राप्त हो सकती। अब तेरी आयु थोड़ी ही शेष है, परन्तु तुझे भी मृत्यु के पहले ज्ञान प्राप्त हो सकता है।' यह कह कर वे अन्तर्धान हो गए। अब उस वृद्ध राजा का हाल सुनो। उसके एक कन्या थी, जिसे वह प्राणों से भी अधिक प्यार करता था। जब वह महेश्वर से बात कर रहा था, उसी समय उस कन्या को साँप ने काट खाया और उसकी मृत्यु हो गई। राजा को इसका पता नहीं लगा, क्योंकि लोगों ने भयवश उसे सूचना नहीं दी। अतः सदैव की भाँति वह अपनी उस कन्या को देखने गया और जब वह उसके आवासकक्ष में पहुँचा तो उसे निश्चेष्ट लेटी हुई पाया।

उसके देखते-देखते एक मक्खी वहाँ आई और उसके ऊपर भिनभिनाने लगी और फिर जाकर उसके होठों पर बैठ गई। यह देखकर वह राजा अत्यन्त भयभीत हुआ और उसकी आँखों पर से अचानक मोह का आवरण हट गया और उसकी जीवन की अभिलाषा आमूल नष्ट हो गई। वह वहाँ से लौट पड़ा और बिना रुके हुए गंगातट पर चला गया और वहाँ कुछ वर्षों तक रहकर जीवन और मृत्यु को समान समझता हुआ अपने पापों का प्रक्षालन करता रहा। अन्त में उसने गंगा में ही समाधि ली और गंगा ने उसे अपने अंक में लेकर सागर तक पहुँचा दिया।"

यह कथा सुनकर वैरागी ने अमरसिंह से कहा--"अब तुझे भी तेरे मार्ग संबंधी अज्ञान से मुक्ति मिल जायगी।" यह कह कर उसने अमरसिंह की ओर अपनी जीभ लपलपाई। परन्तु अमरसिंह ने तुरन्त अपने खड्ग से उस पर प्रहार किया और संयोग से उससे उसकी जीभ कट गई। फिर उसने वैरागी से कहा—"सावधान हो जा धूर्त बुड्ढे, अन्यथा मैं तेरा बध कर दूँगा। अब मैं तेरे कमल देश का मार्ग बतलाने की प्रतीक्षा में अधिक समय नष्ट नहीं करूँगा। तेरे न बतलाने पर भी मैं स्वयं वह मार्ग ढूँढ लूँगा।" तब अचानक उस वैरागी ने विकट रूप धारण कर लिया और कहा—"सत्यानाश हो तेरा अभागे राजपुत्र! अब तू कमलों के देश में नहीं, राक्षसों के देश में है, जिनका मैं राजा हूँ। तेरे पूर्व जन्म के शरीरी पापों के समान मेरी प्रजा अब तुझे अपनी माया से अभिभूत कर देगी। यहाँ उलूपी, गोघ्न, लोमश ग्राह, तुषार शीतक, लंबकर्ण, षट्पद और बालू के गड्ढों में रहने वाला विकट चक्षु तथा अन्य असंख्य राक्षस तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। और यदि तू इनसे बच भी जाय और कमल के देश

पहुँच जाय, तो अभी तुझे वहाँ से लौटकर आना भी तो है।" यह कहकर वह राक्षसी हँसी हँसता हुआ अदृश्य हो गया और अमरसिंह अकेला रह गया।

—छ:—

अमरसिंह ने अपने मन में कहा—"यद्यपि मैंने इस अशुभभाषी वैरागी की जिह्वा काट दी, फिर भी इसने मुझे. मेरा मार्ग नहीं बताया।" और वह हाथ में तलवार ले वृक्षों के बीच आलोकित पथ से आगे बढ़ा। वे वृक्ष राक्षसों के समान जान पड़ते थे और उनकी शाखाएँ उन राक्षसों के केश के समान थीं, जिनके बीच से छन छनकर चन्द्रमा का प्रकाश आ रहा था, मानो चन्द्रमा कुतूहलवश अमरसिंह की ओर झाँक रहा था और उसके साहस से प्रसन्न होकर उसका पथ आलोकित कर रहा था। वह आगे बढ़ता ही चला गया। धीरे-धीरे वृक्षों की पंक्ति विरल होने लगी। अन्त में उसने सामने की ओर दृष्टि की तो एक स्वच्छ स्थान में उसे गाढ़े नीले रंग के जलवाली एक वन पुष्करिणी दिखाई पड़ी, जिसमें स्थान-स्थान पर कुमुद खिले हुए थे। यह पुष्करिणी विधाता ने मानो ऊपर के तारामंडित विस्तृत आकाश का उपहास करने के लिये बनाई थी अथवा नीचे के संसार को उसमें प्रतिबिम्बित करने के लिये उसका दर्पण के रूप में निर्माण किया था। उसके चारों ओर खद्योत जगमगा रहे थे, जो ऐसे जान पड़ते थे, मानो दिन भर कमल-पुष्पों की प्रीति में आबद्ध भौरों के समूह रात्रि में उनका वियोग न सह सकने के कारण अपने साथ अनेक दीपक लेकर फिर लौट आए हों।

जब अमरसिंह ने उस पुष्करिणी के जल के भीतर झाँका तो उसके स्निग्ध दर्पण में उसे एक स्त्री-मूर्ति नृत्य करती हुई दिखाई पड़ी। जब वह नाचती थी तो उसके दूर्वा के रंग के हरे वस्त्र उसके नृत्य की गति से उत्पन्न वायु में उसके अंगों के ऊपर फहर-फहर उठते थे और चन्द्रमा के प्रकाश में उसके वक्षस्थल पर स्वेद विन्दु रत्नों की भाँति चमकते दिखाई पड़ते थे। उसका स्पन्दित वक्षस्थल उसके केशों की छाया में और उसके बाहर समुद्र की तरंग के समान नीचे-ऊपर हो रहा था। उसके केश इतने काले थे कि वे रात्रि के अन्धकार के सार की राशि के समान प्रतीत होते थे। नाचते-नाचते जब वह गाने लगती थी तो उसका स्वर मोहन-मंत्र के समान सुनाई पड़ता था और कानों को मलयानिल के समान शीतलता प्रदान करता था। जब अमरसिंह ने ऊपर दृष्टि उठाई तो पुष्करिणी के दूसरे तट पर उसने उस वास्तविक स्त्री को नाचते हुए देखा, जिसकी छाया मूर्ति उसने जल में देखी थी।

उस स्त्री ने पुष्करिणी के इस पार अमरसिंह को देखा और दोनों की आँखें चार हुई। तत्क्षण उसने नाचना-गाना बन्द कर दिया और ताली बजाई और कोकिल के समान मधुर कंठ से उसे पुकारकर कहा—"हे सुन्दर परदेशी, इधर मेरे पास आओ, क्योंकि मैं अकेले नाचते-नाचते थक गई हूँ और मुझे तुमसे एक बात पूछनी है।" यह कह कर वह एक वृक्ष का सहारा लेकर खड़ी हो गई और प्रतीक्षा करने लगी। उसका एक हाथ वृक्ष के तने पर था और दूसरा उसके नितम्ब पर। उसका वक्षस्थल वेग से स्पन्दित हो रहा था, जिससे वह ऐसी जान पड़ती थी, जैसे चन्द्रमा के दर्शन से उमड़ते हुए सागर की तरंगों के स्पन्दन का सार ही स्त्री का

रूप धारण करके खड़ा हो। अमरसिंह ने उसकी ओर देखा और अपने मन में कहा—"इसमें कोई सन्देह नहीं कि राक्षसों की कन्याएँ राक्षसों से भी अधिक भयंकर होती हैं। कुशल इतना ही है कि मैंने श्री के नीले नयनों का रक्षा-कवच धारण कर लिया है, अन्यथा इस वनबाला के कटाक्षों ने कुल्हाड़ी की भाँति कभी मेरे हृदय के दो टुकड़े कर दिए होते।"

इसके अनन्तर अमरसिंह पुष्करिणी के किनारे-किनारे उस पार गया और वहाँ उस स्त्री को देखा। जब उसके निकट पहुँचा तो उस स्त्री के अधर हिले और उसने अपने कंकण-भूषित कर से संकेत कर उसे बुलाया। चाँदनी में उसके नेत्र सर्प के नेत्रों के समान चमक रहे थे। वह निकट आकर उसके सामने खड़ी हो गई और उसके कंधे पर अपना हाथ रक्खा, जिसका स्पर्श उसे (अमरसिंह को) पत्ती का सा लगा। फिर उसने अपना सस्मित वदन उठाकर अमरसिंह के मुँह की ओर देखा और कहा—"मैं दैत्य-कन्या उलूपी हूँ और यहाँ इस वन में अकेली ही रहती हूँ। जल में पड़नेवाले मेरे प्रतिबिम्ब के अतिरिक्त यहाँ और कोई नहीं, जिससे मैं अपनी तुलना करूँ। तुमने तो दूसरी स्त्रियों को देखा है। इसलिये मैं तुमसे पूछती हूँ कि क्या मुझसे अधिक सुन्दर आँखें तुमने कभी देखी हैं?" तब अमरसिंह ने झुककर दो गहरे सरोवरों की-सी उसकी आँखों को ध्यान से देखा, और उसे ऐसा अनुभव हुआ कि वे नेत्र नहीं दो मुष्टिक हैं, जो अपने आघात से उसके हृदय को चूर्ण किए डाल रहे हैं। उसने अपने मन में कहा—"इसका पूछना उचित ही है। क्योंकि इसके नेत्रों को केवल एक व्यक्ति के नयनों के अतिरिक्त और किसी से प्रतिद्वन्दिता का भय नहीं है।" परन्तु प्रकट रूप में उसने कहा—"बाले! तेरे नयन अत्यन्त सुन्दर

हैं। परन्तु सागर में अनेक रत्न होते हैं और वे सभी अपने-अपने को सर्वोत्तम समझते हैं। फिर भी कौस्तुभ मणि ही उन सब में श्रेष्ठ है।"

तब उलूपी का चन्द्रमुख जैसे मेघाच्छन्न हो गया और वह तुनुक कर उससे अलग जा खड़ी हुई और बालकों के समान मुँह बिचकाने लगी। फिर अचानक वह घूम पड़ी और अपनी लता के समान सुन्दर गोल भुजाओं को सिर तक उठाकर उसने अपना जूड़ा खोलकर झटक दिया। उसका कवरी-भार उसके नेत्रों के ऊपर इस प्रकार गिरा, जैसे नक्षत्रों पर निशीथ का अन्धकार, और उसने उसे चारों ओर से अवगुण्ठित कर लिया और वह नीचे धरती तक लटक कर नाग के समान उसके पैरों के चारों ओर लिपट गया। तब उसने हाथ से उन केशों को अपने मुख पर से हटा दिया और उनके जाल के भीतर से मुस्करा कर कहा—"अच्छा, मेरे जैसे केश तो तुमने कभी नहीं देखे होंगे ?" केशों के भीतर से उसके कटाक्ष का अमरसिंह के हृदय पर ऐसा आघात हुआ, जैसे मेघों के बीच से उसके ऊपर बिजली गिर पड़ी हो। उसने अपने मन में कहा—"यह ठीक ही कहती है। यदि मेरे प्राण पहले ही से श्री की आँखों की बरौनियों के पाश में न बँधे होते तो इस अन्तहीन विलक्षण केशराशि के जाल में वे अवश्य ही लवा के समान फँस जाते।" परन्तु प्रकट रूप में उसने कहा—"बाले, रात्रि के समय नक्षत्रमंडित आकाश अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है, परन्तु गाढ़े नीले जलवाला समुद्र, जिसमें वह नक्षत्रमंडित आकाश प्रतिविम्बित होता है, उससे भी अधिक सुन्दर लगता है, क्योंकि उसमें आकाश और नक्षत्रों की शोभा के साथ उसकी अपनी शोभा भी जुड़ जाती है।"

तब उलूपी बहुत क्रुद्ध हो गई और क्रोध के कारण उसकी चमकती

हुई आँखें बाहर निकल आईं। फिर अचानक वह झुकी और अपने केशों को अपनी भुजाओं में समेटकर और अमरसिंह के पास जाकर उसने उन्हें जाल की भाँति उसके ऊपर फेंका। फिर उसने उसके कान में, जिसे उसने अपने अधरों से स्पर्श कर लिया, कहा—"अरे मूर्ख भौंरे, मैं कुमुद-पुष्प सही, परन्तु कमल के अभाव में तू उससे मेरी तुलना कर क्यों मुझसे द्वेष करता है? कमल तो उष्ण और धूलि-धूसरित होता है और मैं जिस सुधांशु के प्रकाश में खिलती हूँ, उसकी सुधा के समान ही शीतल और सुरभियुक्त हूँ।" अमरसिंह सिहर उठा, क्योंकि उलूपी के केशों में से हजारों इत्रों की मधुर सुगन्ध के बादल के समान विलक्षण सुगन्ध का झोंका आ रहा था, जिसने उसके प्राणों को मुग्ध कर लिया और वह उसके कलकूजन को सुनकर स्वप्न-सा देखने लगा। भय से उसने अपनी आँखें मूँद लीं; तब उसे श्री की घृणा से पूर्ण नीली आँखें अपने सामने दिखाई पड़ीं, और उसके हास्य, डिंडिम के आघात तथा घोषकों के शब्दों की ध्वनि उसके कानों में गूँज उठी, जिससे उलूपी के मोहन-मंत्र का प्रभाव नष्ट हो गया। उसके केशपाश से अपने को मुक्त कर उसने कहा—"हे सुन्दरी, मैं सूर्यवंशी राजपुत्र हूँ, मैं कुमुद को लेकर क्या करूँगा?"

तब उलूपी घायल हाथी की भाँति चिघाड़ उठी। उसने उसकी बाँह पकड़कर उसे बलपूर्वक झकझोर दिया और चिल्लाकर बोली—"क्या तुम्हारे भीतर हृदय नहीं है, उसके स्थान पर केवल पत्थर है, जो मेरी सुन्दरता का तुम्हारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता? क्योंकि मैं जानती हूँ कि मेरे समान सुन्दरी तीनों लोक में नहीं है।" अमरसिंह उसे देखकर चकित रह गया, क्योंकि क्रोध में वह पहले से भी अधिक सुन्दर लगने

लगी। उसने उलूपी से कहा—"हे दैत्य कुमारी, तुम सच कह रही हो। परन्तु एक पूर्ण रूप से भरे हुए मदिरा के पात्र में मदिरा की एक बूँद भी और नहीं समा सकती, चाहे वह मदिरा कितनी ही अच्छी हो; और मेरा हृदय ऐसे ही पूर्ण घट के समान है। इसलिये अब तुम अपने प्रेम के अयोग्य समझ कर मुझे चले जाने दो, क्योंकि मुझे कमल के देश जाना है।" तब उलूपी ने पैर पटककर कहा—"मूर्ख, तू कमल का देश कभी नहीं देख पाएगा।"

फिर उसने तिरस्कारपूर्ण हँसी हँसते हुए उसकी ओर देखा और तुरन्त बैठ गई और अपने लंबे बालों में अपने को लपेट लिया और रोने लगी। रोते-रोते उसकी आँखों से आँसुओं की नदी बह चली, जो उस पुष्करिणी में जाकर गिरी, जिससे तुरन्त उसमें बाढ़ आ गई और सारा जंगल पानी से भर गया। अमरसिंह खड़े-खड़े आश्चर्य के साथ उसे देख ही रहा था कि अचानक उसने अपने को एक बहुत बड़े दलदल में खड़ा पाया, जिसमें उस जंगल के विशाल वृक्ष दलदली झाड़ियों के समान लग रहे थे। और यह लो! उसके देखते ही देखते वह मायाविनी दैत्य-कन्या कुहरा बन गई और भाप की तरह पानी के ऊपर होती हुई उड़ गई। उसके जाते-जाते अमरसिंह ने दूर तक उसकी उत्तरोत्तर मन्द पड़ती हुई हास्य ध्वनि सुनी। अब वह उस जंगल में कमर भर पानी में खड़ा अकेला रह गया।

—सात—

और पानी बढ़ता ही चला गया। अमरसिंह ने अपने मन में सोचा—"स्त्री जाति मात्र की माया विलक्षण होती है, और

उनके श्राँसुश्रों का कोई श्रन्त नहीं, परन्तु यह स्त्री तो निश्चय ही उन सबसे अधिक विलक्षण है, क्योंकि ऐसे श्राँसू तो किसी ने कभी सुने भी न होंगे, जो नदी की भाँति बढ़कर संसार का एक बड़ा सा भाग डुबा दें। श्रब कुशल इसी में है कि इस बढ़ती हुई जल-राशि में समाधि पाने के पूर्व मैं कुछ देर किसी वृक्ष के ऊपर शरण लूँ।" यह सोच वह एक वृक्ष पर चढ़ गया श्रौर चारों श्रोर पानी के ऊपर दृष्टि दौड़ाई तो चाँदनी में पानी के ऊपर फैला हुश्रा कुहरा उसे ऐसा लगा, जैसे वैदूर्य मणि के फर्श पर चाँदी का पर्दा लटक रहा हो। तब उसने श्रपने मन में कहा—"क्या यह केवल माया है ? श्रथवा इस वन का नाम इसके रूप के श्रनुसार श्रत्यन्त सार्थक है, क्योंकि यह सचमुच महादेव की जटा ही है, इसके वृक्ष उस जटा के बाल हैं, यह दूर तक फैला हुश्रा जल उसमें भटकती हुई गंगा है, श्रौर यह चन्द्रमा उन चन्द्रशेखर भगवान का श्राभूषण। परन्तु यह जल तो बढ़ता ही जा रहा है, मैं वृक्ष पर श्रौर ऊँचे बढ़ चलूँ।"

परन्तु ज्यों-ज्यों वह ऊपर चढ़ने लगा, त्यों-त्यों जल भी ऊपर चढ़ने लगा, यहाँ तक कि श्रन्त में उसे जल, श्रौर चन्द्रमा श्रौर उस वृक्ष के उस भाग के श्रतिरिक्त जो उसके ऊपर श्राकाश में उठा हुश्रा था, कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। उसने श्रपने मन में कहा – "मुझे ऊपर चढ़ना ही होगा, क्योंकि इसके श्रतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। श्रौर श्रब यदि मैं श्रीपति (लक्ष्मीपति विष्णु) के समान कच्छप की पीठ पर बैठकर इस महासमुद्र के जल से श्रपनी रक्षा नहीं करता तो मेरा विनाश श्रवश्यम्भावी है; क्योंकि यदि यह साधारण वृक्ष शिखा-विहीन नहीं है तो मैं श्रभी इसकी चोटी पर पहुँच जाऊँगा श्रौर उसके साथ ही मृत्यु के मुख में

भी। यदि यह जल न रहे तो भी, यह समझ में नहीं आता कि मैं इतनी ऊँचाई से फिर नीचे कैसे उतर पाऊँगा।" ऐसा सोचकर वह ऊपर चढ़ता ही गया और साथ-साथ पानी भी ऊपर चढ़ता गया। यहाँ तक कि चन्द्रमा अस्त हो गया और धीरे-धीरे रात्रि व्यतीत हो गई।

तब पूर्व दिशा में सूर्य का उदय हुआ और वह भी अमरसिंह की भाँति आकाश में चढ़ने लगा। वृक्ष पर चढ़ते-चढ़ते अमरसिंह के शरीर से पसीना चूने लगा और अन्त में वह थककर रुक गया। अपने मन में उसने कहा—"अब मैं और ऊपर नहीं चढ़ सकता। जब प्रत्येक दशा में मेरी मृत्यु निश्चित है तो मैं क्यों व्यर्थ ऊपर चढ़ता चलूँ, क्योंकि अब तो मैं संसार की छत पर पहुँच चुका हूँ, जहाँ आकाश में सूर्य के साथ अकेला मैं ही हूँ।"

इसके पश्चात् जब उसने नीचे ताका तो न कहीं जल, न वृक्ष। उसका सिर चकराने लगा और आँखें जैसे शून्य में तैरने लगीं। उसे अपने नेत्रों पर विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि वह आकाश के मध्य में एक ऊँचे पर्वत के शिखर पर खड़ा था; और उसके आगे-पीछे, चारों ओर तपते हुए बालू का विस्तृत मरुस्थल था, जो जहाँ तक दृष्टि जाती थी, वहाँ तक फैला हुआ था और आकाश उसके छोर पर टिका हुआ था। सूर्य की आग्नेय रश्मियों के ताप से वह मरुस्थल भट्ठी की तरह जल रहा था। उसमें कहीं गहरी खाइयाँ, कहीं छोटे गड्ढे और कहीं बड़े-बड़े खड्ड बन गए थे। उसका धरातल स्त्री के स्पन्दित वक्षस्थल के समान ऊपर-नीचे हो रहा था। ऐसा लगता था, जैसे वह सजीव हो, यद्यपि वस्तुतः वह मृत्यु का निवास ही था। अमरसिंह ने उस मरुस्थल के ऊपर नुकीली पूँछों वाले जीवों को देखा, जो बड़ी शीघ्रता से इधर-उधर रेंग रहे थे। उनका रंग

बालू का सा था। वे विलों में होकर मरुस्थल में प्रविष्ट हो जाते, और फिर बाहर निकल आते और चुपचाप खड़े हो जाते, फिर अदृश्य हो जाते थे। यह सब करते समय उनकी पूँछें पल भर भी विश्राम नहीं लेती थीं। उनकी चमकीली आँखें इधर-उधर देखने के लिये बालू के बाहर ही निकली रहती थीं। उस विजन प्रान्त के एकाकीपन में अमरसिंह को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उन सबकी क्रूर आँखें उसी को खोज रही हैं और अब उसे पाकर उसी पर गड़ गई हैं। मानो वे उससे कह रही थीं कि अब तुम भागकर नहीं जा सकते।

तब उसने मन में सोचा—"अब तो मेरे बचने का कोई उपाय नहीं है और अब मेरी मृत्यु निश्चित रूप से आ पहुँची है; क्योंकि यहाँ इसी प्रकार टँगे रहना संभव नहीं है, और चाहे आगे बढ़ूँ या पीछे लौटूँ, दोनों ही भाँति मृत्यु निश्चित है। परन्तु यदि मरना ही है तो मेरी कामना है कि इन क्रूर नेत्रों के सामने नहीं, प्रत्युत श्री के नयनों की नीलम-सी छाया में प्राणत्याग करूँ। परन्तु प्रश्न तो यह है कि इन भयंकर सिकतावासी जीवों की चौकन्नी आँखों के सामने से मैं भाग कैसे पाऊँगा? क्योंकि इस बालू में, जिसके ऊपर ये जीव मेघों की छाया के समान फिसलते हैं, मेरा तो चलना ही कठिन है, क्योंकि इसमें मेरे पैर इस प्रकार धँसेंगे, जैसे समुद्र की लहरों पर चलने से।"

इसी प्रकार सोचता हुआ वह दिन भर उस ऊँचे स्थान पर टिका रहा, वहाँ से उतरने का साहस नहीं हुआ। अन्त में सूर्य पश्चिम दिशा में जाकर अस्त हो गया और चन्द्रमा का उदय हुआ। उसका प्रतिबिम्ब उन मरुवासी राक्षसों की चमकीली आँखों में पड़ रहा था, जो दूर से उस काले मरुस्थल

में श्याम कमलदल पर पड़े हुए जलबिन्दुओं के समान चमक रही थीं। अमरसिंह रात भर बैठा उन्हें इस प्रकार देखता रहा, जैसे कोई पक्षी साँप की आँखों को देखता है।

इस प्रकार भोर हो गया, और जब दूर क्षितिज पर उष:कालीन प्रकाश झिलमिलाने लगा तो आकाश पर बहुत दूर उस अरुण प्रकाश में उसे दो काले धब्बे दिखाई पड़े और वे उसके देखते-देखते बड़े होने और शीघ्र गति से उसके समीप आने लगे। उनके ऊपर पड़ती हुई उदयकालीन सूर्य की अरुण रश्मियाँ जैसे दर्पण पर से चमक कर उसके ऊपर आ रही थीं। जब वे धब्बे और निकट आ गए तो उसने देखा; वे दो रुपहले हंस थे, जो अपनी चोचों में एक तीसरे सुनहले हंस को लिए आ रहे थे। उन दोनों हंसों ने विद्युद्वेग से उस भयानक मरुस्थल को पार किया और आकर उस पहाड़ी पर उसके निकट ही विश्राम करने के लिये बैठ गए।

तब अमरसिंह ने कहा—"स्वागत सुन्दर पक्षियो, निश्चय ही तुम लोग पक्षी नहीं प्रत्युत कोई देवता हो और किसी शाप के कारण इस हंस योनि में पड़ गए हो। तुम कहाँ से आए हो, कहाँ जा रहे हो और यह मृत स्वर्ण-देह किसकी है, जिसे तुम अपने साथ लिए जा रहे हो?"

तब हंसों ने कहा—"यह मृत देह हमारे राजा की है, जिसे हम बहुत दूर अपने देश मानसरोवर को ले जा रहे हैं, क्योंकि कल कमल देश में इनकी मृत्यु हो गई। अब हमें बहुत शीघ्र इनको लेकर अपने देश पहुँचना है, जिससे इनकी अन्त्येष्टि यथाविधि संपन्न हो सके।"

अमरसिंह ने जब उनके मुख से कमल देश का नाम सुना तो उसका हृदय उछल उठा। तलवार हाथ में ले वह चिल्लाकर उस मृत देह की

ओर झपटा और उन हंसों से कहा—"अब तुम यह प्रतिज्ञा करो कि जिस प्रकार तुम लोग इसे कमल के देश से यहाँ ले आए, उसी प्रकार अभी इसे यहीं छोड़ पहले मुझे वहाँ ले चलोगे और फिर इसी स्थान पर वापस आओगे; अन्यथा मैं इसे अपने पास रक्खूँगा और तुम दोनों को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा।"

जब हंसों ने देखा कि इससे बचने का कोई उपाय नहीं है तो उन्होंने उसकी बात मान ली और शपथ खाकर उसे वचन दे दिया। तब अमरसिंह ने एक हाथ से एक हंस की और दूसरे से दूसरे की गरदन पकड़ ली और वे दोनों अपनी गरदनें पसार उसे लटकाए हुए मरुभूमि के ऊपर से उड़ चले। मरुनिवासी उन क्रूर राक्षसों की आँखें जो उसे इस प्रकार भाग निकलते देखकर मानो क्रोध के कारण चमचमा रही थीं, अब उससे बहुत दूर पीछे छूट गईं। बहुत देर तक उड़ने के बाद वे मरुस्थल के किनारे पर आ गए। तब अमरसिंह ने नीचे की ओर ताका, तो उसे बहुत दूर नीचे श्री की आँखों की तरह झिलमिलाता हुआ नीला सागर दिखाई पड़ा, जिसमें कुछ दूर पर उसने नीललोहित रंग के कालीन पर रखे हुए ईषत्कृष्ण वर्ण के रत्न के समान एक द्वीप देखा, जिसके बीच में एक नगर था। उसने हंसों से पूछा —"यह नीचे क्या दिखाई पड़ रहा है ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"यही कमल का देश है।"

उस समय उसे इतना हर्ष हुआ कि वह उन हंसों की गरदनें छोड़कर तालीं पीटने लगा। फिर तो उसी क्षण वह एक पत्थर की भाँति समुद्र में जा गिरा, और उधर हंस शीघ्र ही मरुस्थल के ऊपर से उड़ते हुए अपने राजा के शव के पास पहुँच गए, जिसे वे पहाड़ी पर छोड़ आए थे।

—आठ—

परन्तु अमरसिंह समुद्र में गिरने के बाद तुरन्त पक्षी की भाँति पानी के ऊपर निकल आया और सामने बहुत दूर समुद्र में उसे कमल का देश दिखाई पड़ा। वह हर्ष से चिल्ला उठा और उसी दिशा में तैरने लगा। दिन भर वह तैरता रहा और बड़ी कठिनाई से तट तक जा पहुँचा, परन्तु वह एकदम अशक्त हो गया। सूर्यास्त के समय वह पानी से बाहर निकल किसी प्रकार रेंगता हुआ तट पर गया और थकावट के मारे वहीं लेट गया और उसे नींद आ गई। वह रात भर सोया और दूसरे दिन भी दिनभर सोता रहा, और जब उसकी नींद खुली तो उस समय चन्द्रमा अपने पूरे गोल आकार में मानो यह देखने के लिये निकल आया कि वह अभी वहीं है वा कहीं चला गया।

तब वह उठकर खड़ा हो गया और आँखें मलते हुए बोला—"अहा! अब मेरी यात्रा समाप्त हो गई और उससे उत्पन्न सारे क्लेश स्वप्नवत् बिदा हो गए। यही है वह विलक्षण कमल का देश, जिसका इन्दिरालय में कभी किसी ने नाम भी नहीं सुना था। और अब जब मैं यहाँ पहुँच गया, तो जितना शीघ्र हो सके, यहाँ से लौट चलने के सिवा मुझे यहाँ करना ही क्या है? क्योंकि मैं तो केवल इसलिये इसका पता लगाना चाहता था कि मैं कह सकूँ कि मैं कमल के देश हो आया हूँ। परन्तु इतने से ही मेरा विश्वास कौन करेगा? इसलिये जब मैं यहाँ तक आ ही गया हूँ तो अच्छा होगा कि मैं इसका निरीक्षण कर इसकी विशेषताओं को जान लूँ, जिससे दूसरी बार फिर मुझसे वंचकों का सा व्यवहार न किया जाय।"

फिर वह तट के ऊपर जाकर नगर की सड़कों पर पहुँच गया, जो चन्द्रमा की रजत-किरणों के प्रकाश में कहीं श्वेत और कहीं कृष्ण वर्ण की दिखाई देती थीं। वह उन सड़कों पर घूमने लगा, परन्तु वहाँ किसी से भेंट नहीं हुई। सम्पूर्ण नगर जनशून्य, वन्ध्या के जरायु के समान अन्धकार-मय तथा मृत्यु की पाषाण-मूर्ति के समान नीरव था। अन्त में घूमते-घूमते वह एक विशाल प्रासाद के निकट आया, जिसके खुले हुए द्वार मानो उसे भीतर प्रवेश करने के लिये निमंत्रण दे रहे थे। वह भीतर चला गया, और आश्चर्यान्वित हो, गूँजती हुई पदध्वनि के साथ एक कमरे से दूसरे कमरे में घूमने लगा। अचानक उसने एक द्वार में प्रवेश किया तो एक बहुत बड़े कमरे में आ गया, जिसकी दीवारों में ऊँची-ऊँची खिड़कियाँ थीं, जिनमें होकर कर्पूर के समान शीतल चन्द्रमा का प्रकाश छत पर टँगे हुए चन्द्रकान्त मणियों के गुच्छों पर पड़ रहा था। उन मणियों से अमृत बूँद-बूँद करके भूमि पर टपक रहा था। कमरे के दूसरे छोर पर एक सोने का पलंग था, जिस पर श्वेत वस्त्र से ढका हुआ एक शव लिटाया हुआ था।

उसे देखकर उसने अपने मन में कहा—"बड़े आश्चर्य की बात है! यह व्यक्ति कौन हो सकता है, जो इस सूने कमरे में अकेला लेटा हुआ है? फिर वह खिड़कियों में से आते हुए प्रकाश और दीवारों की छाया में से होता हुआ आगे बढ़ा और कमरे के छोर पर पहुँच कर पलंग के पास जा खड़ा हुआ। उसने झुककर वस्त्र का एक सिरा उठा कर शव का मुँह खोल दिया और उसे देखकर आश्चर्यचकित हो गया—वह मुख श्री का था!

अमरसिंह इतना घबरा गया कि उछल कर चिल्ला पड़ा। उसकी तल-वार झन्न से स्फटिक के फर्श पर गिर पड़ी। वह सोचने लगा कि यह कोई

स्वप्न है या माया है। मैं तो इसे जीती-जागती इन्दिरालय में छोड़ आया था, और अब तीनों लोकों की यात्रा करके यहाँ आया तो यह अन्तरिक्ष के इस छोर पर इस सूने कमरे में मरी हुई पड़ी है !

अमरसिंह भित्तिचित्र की भाँति चुपचाप श्री के मुख को देखता खड़ा रहा। इस प्रकार धीरे-धीरे रात बीत चली। चन्द्रमा अपने पथ पर आगे बढ़ता चला, चन्द्रकान्तमणियों से बूँद-बूँद करके अमृत भूमि पर टपकता रहा, और छायाएँ भूमि पर गोलाई से घूमती रहीं। अन्त में बहुत देर के बाद उसका चित्त ठिकाने हुआ। तब उसने वस्त्र का छोर हाथ से गिरा दिया और शव का मुँह फिर ढक दिया। फिर झुककर अपनी तलवार उठा ली और धीरे-धीरे वह उस कमरे के बाहर निकल आया। वह एक सरोवर की स्फटिक की सीढ़ियों पर जाकर बैठ गया और इस प्रकार देखने लगा, जैसे स्वप्न देख रहा हो। जब वह इस प्रकार शून्य में देख रहा था तो नीले सागर के सदृश श्री के नयन उसके नेत्रों के सामने आ उपस्थित हुए और उसके स्मृतिमंदिर में डिंडिम के आघात और घोषकों के उच्च स्वर की क्षीण प्रतिध्वनि गूँज उठी और उसका हृदय वियोग के बीते वर्षों की अनन्त दूरी से आती हुई मन्द ध्वनियों से परिपूर्ण हो गया। इस प्रकार बैठे-बैठे अन्त में सूर्योदय हो गया।

तब अमरसिंह उठकर खड़ा हो गया और उसने हाथ से माथा ठोंककर कहा—"समझ में नहीं आता कि यह स्वप्न है या सत्य। परन्तु यह मैं जानता हूँ कि अब मुझे किसी प्रकार इस समुद्र और उस भयानक मरुस्थल तथा जंगल को पार करके अविलंब इन्दिरालय लौट चलना चाहिए और राजा से सारा वृत्तान्त कहकर उससे अपनी वधू को माँगना चाहिए।

परन्तु पहले मैं इस सरोवर में स्नान कर लूं, क्योंकि रात में मैंने जो कुछ देखा तथा मुझे जो आघात सहना पड़ा है, उसके कारण मेरा हृदय भारी हो रहा है और सिर में पीड़ा हो रही है।"

इसके पश्चात् उसने सीढ़ियों से नीचे उतरकर सरोवर के जल में डुबकी लगाई।

—नव—

जब वह पानी के ऊपर निकला तो उसके कानों में डिंडिमाघात की उच्च और स्पष्ट ध्वनि सुनाई पड़ी। उसने ध्यान लगाकर सुना तो घोषकगण चिल्ला रहे थे—"जो कोई उच्च कुल का पुरुष कमल के देश हो आया हो वह राजा के पास आए। राजा उसे अपना आधा राज्य देंगे और उससे अपनी राजकुमारी का विवाह कर देंगे।"

तब उसने चारों ओर देखा, परन्तु यह क्या! अब तो वह इन्दिरालय में उसी सरोवर में खड़ा था, जहाँ से वह बरसों पहले कमल का देश ढूँढ़ने के लिये चला था। तब वह आश्चर्य से गिनगिना उठा और उसे रोमांच हो आया। वह सरोवर में पाषाणस्तंभ की भाँति निश्चल खड़ा रहा, उसके शरीर से तरतर पसीना छूटने लगा और सन्देह से उसका हृदय व्याकुल हो गया। वह मन में सोचने लगा—"क्या सचमुच यह सत्य है, अथवा केवल स्वप्न है? वह कमल का देश क्या हो गया, और मेरा सारा परिश्रम क्या मिथ्या था? क्योंकि यहाँ तो मैं इन्दिरालय में खड़ा हूँ और वही घोषक, जिन्हें मैं यहाँ छोड़कर गया था, ठीक पहले ही की भाँति चिल्ला रहे हैं और डुग्गी पीट रहे हैं।"

तब वह अचानक चिल्लाकर बोल उठा—"अच्छा तो अब मैं राजा के पास चलूँ, क्योंकि अब पुरस्कार प्राप्त करने का समय आ गया है। वह कूद कर पानी के बाहर निकला और पागल की भाँति दौड़कर सीढ़ियों पर चढ़ गया और घोषकों के पास जाकर बोला—"बन्द करो यह व्यर्थ का चिल्लाना और बेकार ढोल पीटना, और ले चलो मुझे शीघ्र राजा के पास, क्योंकि मैंने कमल का देश देखा है।"

घोषकों ने उसे पहिचाना नहीं। अतएव उसकी बात सुनकर उन्हें परम हर्ष हुआ। क्योंकि चिल्लाते-चिल्लाते वे जीवन से ऊब गए थे। अतः वे उसे राजा के पास ले जाने की तैयारी करने लगे। अमरसिंह ने ताली बजाकर उनसे कहा—"शीघ्र चलो, विलंब मत करो, शीघ्र, बहुत शीघ्र चलो, नहीं तो मेरा हृदय भग्न हो जायगा; क्योंकि जब मिलन की आशा बहुत दूर थी, तब तो मैंने सरलता से विरह का दुःख सहन कर लिया, परन्तु अब जब कि पुर्नमिलन की घड़ी निकट आ गई है तो मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है। प्रत्येक क्षण मुझे एक युग के समान जान पड़ रहा है और यदि तुम बिलम्ब करोगे तो मैं सहन नहीं कर सकूँगा।" तब घोषकों ने जहाँ तक संभव था, शीघ्रता की और उसे ले जाकर राजा के पास उपस्थित कर दिया।

परन्तु जब राजा ने अमरसिंह को देखा तो उसने नेत्रों को कुंचित कर उसे ध्यान से देखा और उसमें बहुत परिवर्तन हो जाने पर भी उसे पहिचान लिया और अपने मन में कहा—"अवश्य यह वही धूर्त है जो पहले मुझे ठगने आया था, और अब यह फिर यहाँ आ गया।" उसने अमरसिंह से कहा—"छद्मवेषी, मैं तुझे जानता हूँ। सावधान! इस बार तू बचकर नहीं जा सकता।"

तब अमरसिंह ने कहा —"राजन्, जैसी आपकी इच्छा। परन्तु केवल एक बार मुझे अपनी राजकुमारी से मिल लेने दीजिए, और शीघ्रता कीजिए, क्योंकि मैंने सचमुच कमल का देश देखा है। उसके पश्चात् जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा व्यवहार मेरे साथ कीजिए।" यह कहते-कहते वह अत्यन्त अधीर हो गया, उसने अपना पैर भूमि पर पटका, उसके नेत्रों में आँसू आ गए और फिर अचानक वह हँसने लगा। उसे देखकर राजा को बड़ा कुतूहल और आश्चर्य हुआ। उसने अपने मन में कहा—"या तो यह व्यक्ति पागल हो गया, अथवा यह जो कह रहा है वही ठीक है और इसने सचमुच कमल का देश देखा है।" परन्तु फिर उसने अमरसिंह से कहा—"याद रख, यदि इस बार भी तू झूठ बोला, तो उसका दंड मृत्यु है।"

अमरसिंह ने कहा—"आप मुझे राजकुमारी से मिला दीजिए, फिर जिस प्रकार चाहिए मुझे मृत्युदंड दीजिए।"

तब राजा ने अपनी कन्या को बुलवाया और थोड़ी देर बाद वह आकर उपस्थित हा गई। परन्तु जब अमरसिंह ने उसे आते देखा तो वह फफक पड़ा और लंबे डग भरता उसकी ओर बढ़ा, और जब श्री ने सहम-कर उसकी ओर दृष्टि फेरी तो उसका मूर्छित हृदय उसके (श्री के) नयनों के नील सागर में निमग्न हो गया। क्षण भर में ही वह अपनी दीर्घ यात्रा और तज्जन्य क्लेशों को भूल गया और उसे उत्कंठा रूपी क्षुधा तथा विरह के दुःख एवं असमय मृत्यु के भय से मुक्ति रूपी अमृत प्राप्त हो गया। श्री ने जब उस अवस्था में उसे अपने सामने खड़ा देखा तो वह तत्क्षण उसे पहिचान गई। उसका हृदय वेग से धड़कने लगा, उसे कंप हो आया और भय और सन्देह के कारण उसके मुख से शब्द नहीं निकले। उसके पूर्व-

जन्म के भूले हुए संबंध अभिव्यक्ति पाने के लिये उसके हृदय में संघर्ष करने लगे । परन्तु वह उसकी उद्धतता से डरती और उसकी दरिद्रता से घृणा करती थी, क्योंकि अब वह पहले की अपेक्षा दसगुना दुबला हो गया था और उसके वस्त्र पहले से अधिक फटे हुए थे । बहुत देर तक वह उसे देखती रही, अंत में किसी प्रकार उसके मुँह से शब्द निकले और उसने धीरे से कहा—"क्या तुम्हीं हो वह वीर यात्री, और अब फिर कोई दूसरी कहानी गढ़कर लाए हो ? परन्तु इस बार तो वह अच्छी ही होनी चाहिए, क्योंकि फिर तीसरी कहानी गढ़ने के लिये तुम कदापि जीवित नहीं रहोगे ।"

परन्तु अमरसिंह तृषित नेत्रों से उसकी ओर झुका और उसका हृदय उसके विस्मृत अतीत को पुनः चरितार्थ करने के लिये व्याकुल होने लगा । वह अत्यन्त उत्कंठा के साथ बहुत देर तक उसे देखता रहा, यहाँ तक कि श्री की आँखें झुक गईं; क्योंकि अमरसिंह के साहस और प्रेम ने उसके हृदय को अभिभूत कर लिया । अमरसिंह ने दो बार बोलने का प्रयत्न किया, परन्तु दोनों बार वह विफल हुआ और उसके नेत्रों से आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें धरती पर गिरने लगीं । अन्त में जब उसका चित्त वश में आया तो वह बोला—"प्रिये, अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा व्यवहार मेरे साथ करो और चाहे जिस प्रकार की मृत्यु मुझे दो । परन्तु मेरे मरने के पहले मुझे यह बतला दो कि इसमें क्या रहस्य है कि यहाँ तो मैं तुम्हें जीवित अवस्था में देखता हूँ और कमल देश में मैंने तुम्हें चन्द्रमा के शीतल प्रकाश में मृत अवस्था में पलंग पर पड़ी हुई देखा ।"

तब श्री ने चीखकर अपने हाथ ऊपर उठा दिए और वह चिल्लाकर

बोली—"हाँ, हाँ, यह सत्य है। इस पुरुष ने यथार्थ में कमल का देश देखा है।" और अचानक क्षण भर के लिये उसको आँखों के सामने से विस्मृति का पर्दा हट गया। उसे अपने पूर्व जन्म की एक झाँकी दिखाई पड़ी और उसने अपने पति को पहिचान लिया। वह तुरन्त दौड़कर उसके अंक में जा गिरी और विशाल वृक्ष से मल्लिका लता की भाँति उससे लिपट गई। उसके नयनों से अश्रुवर्षा होने लगी और वह हर्ष से हँसने तथा प्रेमपूर्वक अपने हाथ से उसका मुख और मस्तक सहलाने लगी। उसने कहा—"वीर हृदय, उस दूर कमल देश में तुमने अकेले ही जाने का कैसे साहस किया? तुम यथार्थ में मेरे पति, उस जन्म में भी थे और इस जन्म में भी हो। इस चिर वियोग के उपरान्त मैंने क्षण भर के लिये तुम्हें पाया है और अब मैं तुम्हारी ही हूँ। बस, इसी प्रकार मुझे फिर ढूँढना और हम दोनों एक बार फिर मिलेंगे और मरने के पहले एक बार फिर परस्पर मिलन के आनंदामृत की दूसरी घूँट का आस्वाद लेंगे, क्योंकि नियति का यही आदेश है। बस मेरी बात याद रखना, हम लोग फिर मिलेंगे।"

इसके अनन्तर वह सीधी खड़ी हो गई और अपने पति को इतने जोर से ढकेल दिया कि वह गिरते-गिरते बचा। जितने लोग वहाँ खड़े थे, सब उसका यह व्यवहार देखकर आश्चर्य में आ गए। उनके देखते-देखते उसका लावण्य शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगा, उसके शरीर से एक उत्तम रत्न की सी आभा फूट पड़ी और उसकी दीप्ति से लोगों की आँखें चौंधिया गईं। उसके अद्भुत नेत्रों से ज्योति की धारा-सी निकल कर कमरे में प्रवाहित होने लगी, जिसने दीवारों को अस्त होते हुए सूर्य के से प्रकाश से उद्भासित कर दिया। यह देखकर उसका पिता बहुत प्रसन्न हुआ,

क्योंकि उसने सोचा कि अब यह विवाह कर लेगी और मेरा जन्म सफल हो जायगा। परन्तु ज्योतिषियों ने निराशा के साथ एक दूसरे को देखा, क्योंकि वे जानते थे कि अब इसकी मृत्यु समीप है। सो उनके देखते-देखते श्री अचानक लटक गई और तुषारहत कमल की भाँति उनके सामने भूमि पर गिर पड़ी।

तब ज्योतिषियों ने शोक के साथ कहा—"अब इसके प्राण पखेरू उड़कर कहीं अन्यत्र चले गए।" राजा श्री को भूमि पर गिरते देख और ज्योतिषियों की बात सुनकर ज्ञानशून्य हो गया और मूर्छित होकर उसके पास गिर पड़ा। परन्तु अमरसिंह वहाँ से पीछे लौट पड़ा और प्रासाद से निकलकर बाहर सड़क पर आ गया।

—दस—

वह मदोन्मत्त की भाँति इधर-उधर लड़खड़ाने और लोगों से टकराने लगा और लोग उसे देख आश्चर्य करने और यह कहकर उसका उपहास करने लगे कि—"देखो, देखो! यही है वह दरिद्र राजपुत्र, राजकुमारी का प्रेमी, जिसे देखकर ही उसकी मृत्यु हो गई।" परन्तु अमरसिंह को श्री के शब्दों के अतिरिक्त और कुछ सुनाई नहीं पड़ता था, न उसके नयनों के अतिरिक्त कुछ दिखाई पड़ता था। वह उसी प्रकार कठपुतली की भाँति लड़खड़ाता रहा। उसके पैर अपने आप गतिमान होते थे। इसी प्रकार अन्त में वह पहले की भाँति सरोवर पर पहुँच गया और वहाँ भूमि पर गिर पड़ा। उसे यह भी सुधि न रही कि मैं कहाँ हूँ और क्या कर रहा हूँ। उसे दिग्भ्रम हो गया। उसकी आँखें शुष्क हो गईं। वह जड़ के समान

इस प्रकार निश्चेष्ट भाव से पड़ा था, जैसे वह किसी ऐसे लोक में पहुँच गया हो जिसमें सूर्य, चन्द्र, पंचभूत और उनके गुणों का लोप हो गया हो और जिसमें शून्य आकाश के मध्य में वह अकेला रह गया हो। फिर अचानक उसकी स्मृति लौट आई और वह रोने लगा। वह इतना रोया कि जान पड़ता था वह हृदय में खारे समुद्र का उत्स संजोए है। अंत में शोक और थकावट का मारा वह वहीं सरोवर के तट पर सो गया और स्वप्न में श्री को अपने पास खड़ी देखा। उसकी कृपादृष्टि के अमृत ने उसके दग्ध हृदय में पुनः जीवन का संचार कर दिया, जैसे कोई मुनिकन्या अपने आश्रम के पौधों को जल से सींच कर हरा-भरा कर दे।

करुणा और प्रेम के उन दोनों उत्सों से गहरी घूँटें पीने के बाद वह जाग उठा और देखा कि अभी रात है। उसने फिर उस चन्द्रिकाधौत सरोवर पर अपने को अकेला पाया। उसने अपने मन में कहा—"हाय! मैंने अपनी परिणीता वधू को पाया भी, तो अपने पूर्व जन्म में किए हुए पापों के घोर परिणाम स्वरूप फिर उसी क्षण उसे खो दिया। अब तो मैं सचमुच एकाकी हो गया, क्योंकि इस बार वह कहाँ गई, इसका कुछ पता ही नहीं, और मैं उसे ढूढ़ूँ भी तो कैसे? परन्तु उसने तो मुझे निराश न होने देने के लिये कहा था कि हम लोग फिर मिलेंगे। इसलिये अब मैं इस विस्तृत संसार में भ्रमण करूँगा और उसे खोजने में अपना जीवन लगा दूँगा। इसको छोड़कर अब मेरे जीवन में रह ही क्या गया है? तीनों लोकों के नष्ट हो जाने पर महाकच्छप की पीठ के समान इस जीवन में उसके पुनर्मिलन की आशा ही अब मेरा एकमात्र सहारा है।"

यह सोचकर वह वहाँ से उठा और नगर के बाहर चला गया और काल की तरंगों पर एक बुद्बुद के समान इधर से उधर भटकने लगा। वह एक गाँव से दूसरे गाँव और एक नगर से दूसरे नगर में जाता और जो लोग उसे मिलते उन सबसे पूछता—"क्या तुमने मेरी पत्नी श्री को कहीं देखा है ? तुम उसे उसकी आँखों से ही पहिचान जाओगे; क्योंकि वे आकाश के से नीले रंग की हैं।"

परन्तु बहुत पूछने पर भी उसे कोई उत्तर न मिलता, न कोई उसे उसके विषय में कुछ बतला सकता था। उलटे सभी लोग उसकी बात पर आश्चर्य प्रकट करते और उसका उपहास करते थे। कोई कहता—"कौन है यह उन्मत्त यायावर जो नीलनयना सुन्दरी की खोज में इधर-उधर भटक रहा है ?" दूसरा कहता—"श्री तो बड़े-बड़े श्रीपतियों को छोड़ देती है, फिर उसने इस दरिद्र भिखारी को छोड़ दिया तो आश्चर्य क्या ?" तीसरा कहता—"यह विक्षिप्त राजपुत्र चाहता तो है चन्द्रमा को, परन्तु आवश्यकता है इसे औषध की।"

अन्त में उसने तंग आकर मनुष्यों की बस्ती को एकदम छोड़ दिया, और जिस मार्ग से उसने पहले कमल देश की यात्रा की थी, उसी मार्ग को ढूंढ़ने का असफल प्रयत्न करता हुआ निरन्तर जंगलों में घूमने लगा, जहाँ उसकी छाया और उसके खड्ग के अतिरिक्त उसका कोई साथी नहीं था। दिन में वह नील कमल वाले सरोवरों को देख-देख सन्तोष करता था और रात को नक्षत्र-मंडित आकाश को, क्योंकि ये श्री के नयनों के रंगों एवं उनकी छायाओं के दर्पण तथा प्रतिबिम्ब थे।

—ग्यारह—

इस बीच ऐसा हुआ कि महेश्वर पार्वती को अपने वक्षस्थल से लगाए आकाश में जा रहे थे। उनकी दृष्टि नीचे पृथ्वी पर पड़ी तो उन्होंने अमरसिंह को जंगल में भटकते और विलाप करते हुए देखा। वह कह रहा था—"हे श्री ! तुम कहाँ छिपी हुई हो ? क्या मरुभूमि के समान तुम्हारे हृदय में इस मृग के लिये तनिक भी दया नहीं है जो तुम्हारे नयनजल की तृषा से मरा जा रहा है।" तब महेश्वर को तुरन्त कमलमित्र को दिया हुआ अपना वर स्मरण हो आया और उन्होंने आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त समझ लिया। उन्होंने मुस्कराकर उमा से कहा—"अब तुम अपने पिता के घर चली जाओ और वहाँ मेरी प्रतीक्षा करो, क्योंकि यहाँ एक ऐसा कार्य आ गया है जिस पर मुझे ध्यान देना आवश्यक है।" तब पार्वती ने मान करते हुए उनसे कहा—"क्या कार्य है ? मुझे भी बताइए न।" महेश्वर ने कहा—"मैं तुम्हें बता दूँगा, इस समय अवकाश नहीं है, तुम चली जाओ।"

तब देवी सिसकती हुई हिमालय पर चली गईं। इधर चन्द्रशेखर भगवान पृथ्वी पर उतरे और एक ऋषि का वेष धारण कर वन में प्रविष्ट हुए। वे जाकर वन के सबसे घने भाग में खड़े हो गए। विभूति-मंडित उनकी देह श्वेतवर्ण थी, उनके गले में कपालमाला थी और उनकी पिंगल जटा में अर्धचन्द्र शोभित था। अपनी दिव्य शक्ति से उन्होंने एक घंटा उत्पन्न किया जो वन के मध्य में एक वटवृक्ष में लटकने लगा। उस मानसजात घंटे पर उन्होंने अपने त्रिशूल से आघात किया, जिससे उसका मेघगर्जन के समान गंभीर शब्द वन में गूँज उठा।

उस भयानक आह्वान को सुनकर तुरन्त ही समस्त वनवासी यक्ष, राक्षस, पिशाच, वन देवता तथा समस्त वन्य जीव-जन्तु एक साथ उस घंटास्वन की ओर दौड़ पड़े और जैसे मधु पर भौंरे अथवा शव पर मक्खियाँ एकत्र हो जाती हैं, उसी प्रकार वे सब उस घंटे के चारों ओर आ जुटे। जब वे सब एकत्र हो गए तो उन्होंने चराचर सृष्टि के स्वामी से विनयपूर्वक निवेदन किया—"अपने सेवकों को विश्वनाथ की क्या आज्ञा है और हम लोगों का किस हेतु आह्वान किया गया है ?"

महर्षि वेषधारी शिव ने कहा—"इस वन में एक प्रणयी अपनी वधू को खोज रहा है और वह किसी न किसी समय उससे मिलने के लिये यहाँ आएगी। देखना, तुम लोगों में से कोई भी उन्हें हानि न पहुँचाए, अर्थात् उन्हें मार न डाले या खा न जाय। वे हमारी इच्छा और नियति के आदेश से इस वन में अपनी मुक्ति के लिये प्रयत्न करेंगे, क्योंकि एक शाप के कारण उन्होंने मर्त्ययोनि में जन्म लिया है। परन्तु जब वे दोनों यहाँ आकर मिल जायँगे और परिस्थिति अनुकूल होगी तो उनके शाप का अन्त हो जायगा। इसलिये उस समय तुम लोग चाहो तो उन्हें माया से छल सकते हो। परन्तु सावधान ! उनके सिर का एक बाल भी बांका न हो।"

जब भगवान शिव ने इस प्रकार कहा तो सबने उनके चरणों में साष्टांग प्रणाम कर उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली। तब भगवान तांडव करने लगे और वे सब के सब भक्ति के आवेश में उन्मत्त तथा आनन्द-विभोर हो अपनी-अपनी भाषा में उनकी स्तुति करते हुए उनके उस प्रिय नृत्योत्सव में सम्मिलित हो गए। जब उन अर्धनारीश्वर भगवान की

तांडव लीला समाप्त हुई और वे अपने उन भक्तों को अपने दर्शनामृत का पान करा चुके तो उन्हें अपनी पत्नी गिरिसुता पार्वती से की गई अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया और उन्हें सारा वृत्तान्त सुनाने और उनको मनाने के लिये वे कैलास के हिमशिखर पर लौट गए।

—बारह—

इधर इस बीच में श्री की यह स्थिति हुई कि जब उसने इन्दिरालय में अपना शरीर छोड़ा तो पल भर में ही वह कमल के देश में पहुँच गई। वहाँ जाकर वह प्रासाद के विशाल कोष्ठ में पलंग पर लेटे हुए दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो गई। तब वह तुरन्त आँखें खोल कर उठ बैठी, जैसे स्वप्न देखकर जगी हो। उस शून्य कक्ष में अपने को अकेली पाकर उसे बड़ा आश्चर्य, भय और विषाद हुआ और उसने कहा—"हाय! यह कैसा रहस्य है, इस शून्य कक्ष में मैं किस प्रकार आ गई, मैं इस समय संसार के किस भाग में हूँ और मेरे पति कहाँ गए? अब मैं अपने पूर्व जन्म में किए हुए पापों का घोर परिणाम प्रत्यक्ष देख रही हूँ। हाय! मैं उन्हें फिर कैसे पाऊँगी और कहाँ उन्हें ढूढूँगी? निश्चय ही हम दोनों काल के अनन्त सागर में दो छोटी मछलियों के समान हैं। परन्तु फिर भी निराश होने से कुछ हाथ लगने का नहीं। क्या सीता ने राम को नहीं पा लिया था, क्या शकुन्तला दुष्यन्त से फिर नहीं मिल गई थी और क्या दमयन्ती ने वियोग-सागर को पार कर उसके तट रूप नल के अंक में विश्राम नहीं पाया था? प्रेम की शक्ति वास्तव में अमोघ है, और मुझसे बढ़कर प्रेम इनमें से किसका था? क्योंकि मेरा प्रेम एक शरीर से दूसरे

शरीर में भी संचरित हो जाता है और प्रत्येक नए जन्म में वह नया तेज धारण करता रहता है।"

इसके उपरान्त उसने उस श्वेत चैल को (जिसे वह पहले ओढ़े हुए थी) धारण कर लिया और मृगछौने की भाँति अपने ही पैरों की आहट से चौंकती हुई वह उस शून्य प्रासाद के बाहर निकल आई और फाटकों को पार कर सूनी सड़कों पर दौड़ती हुई समुद्र के किनारे तक पहुँच गई। वहाँ वह, अपनी नीलिमा से समुद्र को लज्जित करनेवाले अपने नयनों से उत्सुकतापूर्वक उसे (समुद्र को) देखती खड़ी रही और लहरें उसके चरणों को चूमती रहीं। समुद्र उसके लावण्य को देख क्षोभ से उमड़ रहा था, जैसे चन्द्रमा ने उसे उकसा दिया हो। वायु चुपके से उसे चूम-चूम जाती और उसके वस्त्र और केशों से क्रीड़ा करती थी। तब श्री ने कहा—"हे समुद्र, क्या तुम भी किसी के विरह से दुःखी हो, जों इतना दीर्घ निःश्वास ले रहे हो? क्या तुम भी शोक से व्यथित हो, जो अपने खारे अश्रुसीकरों से मुझे अभिसिक्त कर रहे हो?"

वह इस प्रकार समुद्र को देख ही रही थी कि उसकी लहरों पर उछलता हुआ एक जहाज उसे दिखाई पड़ा, मानो उसके समुद्र पार करने के मनोरथ की सिद्धि साकार हो उठी। इस पोत का स्वामी एक बहुत बड़ा व्यापारी था, जो अपनी व्यापार यात्रा से लौटकर स्वदेश जा रहा था। जब उसने तट पर एक अकेली स्त्री को खड़ी देखा तो वह उसे पकड़ने के लिये शीघ्र एक नौका में बैठ वहाँ गया। परन्तु जब वह तट पर पहुँचा और श्री के नीले नयनों के अद्‌भुत सौन्दर्य और उसके श्वेत वस्त्र को देखा तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, और साथ ही भय भी। उसने

सहमते हुए उससे कहा—"अवश्य ही आप केवल एक मर्त्य मानवकन्या नहीं, प्रत्युत कोई देवी हैं। आप अपना नाम बतलाइए, जिससे मैं जान सकूँ कि मेरी आराध्य देवी कौन हैं।"

तब श्री ने कहा—"महाशय, मैं कोई देवी नहीं, एक राजकुमारी हूँ। मैं अपने पति को खोज रही हूँ। दया कर मुझे समुद्र के पार ले चलिए, क्योंकि मुझे इन्दिरालय जाना बहुत आवश्यक है।" यह सुनकर वह व्यापारी अत्यन्त हर्षित हुआ। उसने सोचा कि इन्दिरालय तो पृथ्वी के दूसरे छोर पर है, और अब मैं इसे अपनी पत्नी बना लूँगा। वह उसके नयनों के लावण्यसागर में निमग्न हो गया और उसने उससे कहा—"हे राजकुमारी, यह पोत और इसमें जो कुछ है, सब तुम्हारा है। आओ, जहाँ भी तुम्हारी इच्छा होगी, वहीं मैं तुम्हें ले चलूँगा।" श्री ने स्वीकार कर लिया। तब वह व्यापारी यह सोचकर कि अब तो यह मेरी पत्नी हो गई, इतना आनंदित हुआ कि संपूर्ण संसार को तृणवत् समझने लगा।

इसलिये जब वह पोत पर पहुँचा तो उससे बोला—"सचमुच तुम्हारा पति बड़ा पतित है। उसे धिक्कार है जो तुम्हारी जैसी अद्वितीय सुन्दरी को छोड़कर अपने संसार से बाहर इधर-उधर भटक रहा है। अब तुम उसे भूल जाओ, क्योंकि अब मैं तुम्हारा पति बनूँगा।" यह सुनकर श्री ने कहा—"ऐसा कहना अधर्म है। इस विषय में मेरे पति का कोई दोष नहीं है। यह भी समझ लो कि एक सती स्त्री के लिये पति ही उसका देवता है।"

व्यापारी ने कहा—"तुम चाहो या न चाहो, तुम्हें मुझसे विवाह

करना ही पड़ेगा। मुझे धर्म-अधर्म की परवाह नहीं। मैं तो केवल तुम्हारे इन अद्भुत नयनों का मतवाला हूँ। अब तुम मेरी हो चुकी और मैं तुम्हें अपने पास ही रखूँगा" फिर वह व्यापारी उसे अपने जहाज पर बैठाकर सावधानी और चौकसी के साथ अपने नगर में ले गया और इस आशा से कि कुछ समय के उपरान्त यह मान जायगी, उसे अपने घर के कोठे पर एक कमरे में बन्द कर दिया, और (उसके फेर में) अपने व्यापार-कार्य की उपेक्षा करने लगा।

तब श्री ने अपने मन में कहा—"खेद है मुझे अपने इस लावण्य पर, जो मेरे लिये वरदान नहीं, एक अभिशाप है, क्योंकि इसी के कारण मैं इस दुष्ट व्यापारी के पंजे में फँसी। तथापि मैं समुद्र के पार तो आ ही गई हूँ, और अब मुझे किंचिन्मात्र विलंब किए बिना इस पापी के चंगुल से निकल भागना चाहिए। अन्यथा इससे भी बुरी स्थिति आ सकती है।" यह सोचकर वह खिड़की के पास गई और बाहर झाँकने लगी। नियति की प्रेरणा ऐसी हुई कि उसी समय उस नगर का राजा हाथी पर बैठकर उधर से जा रहा था। जब श्री ने उसे देखा तो अपने मन में कहा—"इस हाथी के रूप में मेरी मुक्ति ही आ रही है। अब मुझे बड़े पाप से बचने के लिये एक छोटा-सा पाप करना पड़ेगा।" और उसने उस हाथी के महावत को पुकार कर कहा—"महावत! इधर पास आ जाओ, मुझे हाथी की सवारी का आनन्द लेने की बड़ी इच्छा है।" यह सुनकर महावत ने राजा की ओर देखा और राजा ने श्री के मुख की ओर देखा। श्री ने भी अपना नीला कटाक्षशर राजा पर फेंका और उसी क्षण राजा ज्ञान-शून्य हो गया। उसने महावत से कहा—"जैसा वह कहती है वैसा ही करो।"

महावत हाथी को खिड़की के नीचे ले आया और श्री खिड़की में से कूदकर उसकी पीठ पर जा गिरी। अपने को नीचे गिरने से बचाने के लिये उसने राजा को पकड़ लिया और राजा हर्षातिरेक तथा उसके अमृत तुल्य स्पर्श से विह्वल हो गया। एक क्षण का भी विलंब किए विना वह उसे अपने राजप्रासाद में ले गया। उसे इतना आनन्द हुआ, जैसे उसने संपूर्ण पृथ्वी विजय कर ली हो। इधर व्यापारी को जब पता चला कि श्री चली गई तो निराश होकर उसने प्राण त्याग दिया।

प्रासाद में पहुँचते ही राजा ने श्री से पूछा—"तुम्हारा और तुम्हारे कुल का नाम क्या है?" श्री ने उत्तर दिया—"मैं एक दूर देश के राजा की कन्या हूँ और मेरा नाम श्री है।"

राजा ने कहा—"तुमने बहुत अच्छा किया जो उस नीच व्यापारी को छोड़कर मेरे पास चली आईं। भला सिंहिनी का विवाह कहीं शृगाल के साथ होना उचित है? अब मैं तुम्हें अपने मुकुट की सर्वश्रेष्ठ मणि बनाकर रखूँगा, तुम्हीं मेरी राज्यश्री की चूड़ामणि होगी।" तब श्री ने कहा—"हे राजन्, आप ऐसा न कहें, क्योंकि मैं अन्य पुरुष की पत्नी हूँ। मैं आपके पास चापल्य के कारण नहीं, अपनी रक्षा के लिये भागकर आपकी शरण में आई हूँ, क्योंकि वह व्यापारी बलात् मुझे अपनी पत्नी बनाना चाहता था। अतः मेरे साथ न्याय कीजिए और मुझे जाने दीजिए। क्योंकि मैं आपकी पत्नी नहीं बन सकती।"

तब राजा ने कहा—"तुम्हारे नीले नयनों ने मेरा उचित-अनुचित का विवेक एकदम नष्ट कर दिया है। मेरे लिये इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं, और ये मुझे रोकने में उसी प्रकार असमर्थ हैं, जैसे कमल की नाल

उस हाथी को बाँधने में, जिसपर बैठकर तुम मेरे साथ आई हो। तुम व्यर्थ ही मुझसे जाने की अनुमति माँगती हो। तुम अनुमति क्या माँग रही हो, मेरा प्राण ही माँग रही हो। क्योंकि जब तक मैंने अगाध नील सरोवरों की शोभा को हरने वाले तुम्हारे इन नयनों को नहीं देखा था, तब तक मैं निर्जीव ही था। तुम अपनी स्वीकृति भर दे दो, फिर मैं अपने अनन्य प्रेम द्वारा तुम्हारे पति की स्मृति को उसी प्रकार भुलवा दूँगा, जैसे सूर्य एक छिछले जलाशय को सुखा देता है।"

श्री ने कहा—"छिछला जलाशय नहीं, कहिए महासागर, जिसे सूर्य निरन्तर अपनी किरणों से तप्त करता रहता है, फिर भी उसके जल को कम नहीं कर सकता। अपने स्वामी के प्रति मेरा प्रेम उसी महासागर के समान अगाध है।" परन्तु राजा ने उसके वचनों पर ध्यान नहीं दिया; वे केवल उसके कानों तक ही पहुँचते थे, अन्तःकरण में प्रवेश नहीं करते थे; क्योंकि उसका सम्पूर्ण आत्मा सिमट कर उसके नेत्रों में समा गया था और वे नेत्र श्री के आनन को ही निरख रहे थे, जिसने उसे सोमरस के समान मदोन्मत्त बना दिया था।

ऐसी स्थिति देखकर श्री ने अपने मन में कहा—"हाय! एक विपत्ति से मैं किसी प्रकार भागकर बची तो अब इस अधर्मी राजा के चंगुल में फँसकर उससे भी बड़ी विपत्ति में फँस गई। अब तो स्त्रीसुलभ छल और चातुर्य का प्रयोग करने के अतिरिक्त मेरे पास और कोई उपाय नहीं है।" तब उसने अपनी बरौनियों को उठाकर राजा पर एक वक्र कटाक्ष किया जिससे वह मूर्छितप्राय हो गया। श्री ने अपनी धनुष के समान टेढ़ी भौंहों को नचाकर मुस्कराते हुए कहा—"धिक्कार है स्त्री हृदय को जो पुष्प

के समान कोमल होता है और जिसमें दृढ़ता नाम मात्र को नहीं होती। मुझे थोड़ा अवकाश दीजिए, क्योंकि कुछ निश्चय करने के पहले इस विषय पर विचार करना आवश्यक है। परन्तु आप अधिक समय तक मुझसे दूर न रहें, क्योंकि आप देखने में सुन्दर हैं, और यदि मैं पहले से अन्य पुरुष की परिणीता पत्नी न होती तो आप ही मेरे लिये सब प्रकार से योग्य पति थे।" राजा यह सुनकर भ्रांति में पड़ गया। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने सोचा—'अब थोड़ा फुसलाने पर यह मान जायगी।" राजा ने उसकी ओर देखा, वह अपनी कटि की क्षीणता और उरोजों के भार के कारण झुकी हुई उसकी ओर देखती खड़ी-खड़ी मुस्करा रही थी। उसके अंगों की गोलाई और उसके नेत्रों की नीलिमा ने उसे (राजा को) ठग लिया। वह यह भूल गया कि विधाता ने पुरुषों को भ्रम में डालने के लिये ही स्त्रियों को बनाया है, जो बाहर से तो मधु हैं, परन्तु भीतर से विष। फिर यह सोचकर कि अब मेरा जन्म सफल हो गया, वह तुरन्त ही फिर लौट आने का विचार करके उसे वहीं छोड़ अपना राज-काज देखने चला गया।

उसके जाते ही श्री ने कंचुकी को बुलाया और उससे कहा—"तुम मुझे तुरन्त महारानी की सेवा में ले चलो, एक क्षण का भी विलंब करोगे तो तुम्हारे लिये अच्छा न होगा।" कंचुकी भय से काँपने लगा और उसने उसकी आज्ञा मान ली, क्योंकि वह जानता था कि इसका राजा पर कितना अधिकार है। उसने अपने मन में कहा—"राजा इसकी एक दृष्टि के लिये अपना राज्य भी समुद्र में डाल देगा और मेरा प्राण तो अब इसकी तर्जनी पर रक्खा है।" जब श्री रानी के सम्मुख पहुँची तो उसने

उससे कहा—"महादेवी, केवल आप ही मेरी रक्षा करने वाली हैं। महाराज ने आज मुझे नगर में पाया और वे मुझसे अपना विवाह करने के लिये मुझे चोरी से यहाँ ले आए हैं। अब आप मेरे भागने का उपाय कर दीजिए, क्योंकि मैं पराई स्त्री हूँ और उनकी पत्नी नहीं बन सकती। परन्तु आप शीघ्रता कीजिए, क्योंकि यही अच्छा अवसर है जो हाथ से निकल जाने पर फिर नहीं मिलेगा।" तब रानी ने उसे ध्यान से देखा और अपने मन में कहा—"यह ठीक कहती है। मुझे बिना एक क्षण बिलंब किए इसे अवश्य भगा देना चाहिए, क्योंकि यदि यह यहाँ रहेगी और उनकी प्रेयसी बन जायगी तो इसके लिये महाराज सर्वस्व त्याग देंगे और राज्य रसातल को चला जायगा। इसके अतिरिक्त वे मुझसे तथा अन्य रानियों से फिर कभी कोई नाता नहीं रखेंगे, क्योंकि इसका लावण्य ऐसा है, जैसे यह स्त्री के रूप में कामदेव के पंचबाण का ही अवतार हो।"

अतः उसने अपनी विश्वस्त दासियों को बुलाया और उन्होंने तुरन्त श्री को एक नर्तकी के वेष में चुपके से राजप्रासाद के बाहर पहुँचा दिया। राजा जब लौटकर आया और उसे पता चला कि श्री चली गई तो वह विक्षिप्त हो गया और अपने समस्त पुरुष कर्मचारियों का वध करवा दिया।

—तेरह—

श्री जब राजप्रासाद के बाहर आ गई तो तुरन्त एकान्त सड़कों पर होती हुई नगर के बाहर निकल गई और महावन में प्रवेश किया। उसने अपने मन में सोचा—"यदि मैं नगर में रहूँगी तो संभव है फिर राजा के, या हो सकता है उससे भी दुष्ट किसी व्यक्ति के हाथ में

पड़ जाऊँ; क्योंकि दुःख तो इस बात का है कि जो भी व्यक्ति मुझे देखता है वह मेरी आँखों को देखते ही अन्धा हो जाता है। ऐसी स्थिति में ऐसे लोगों के उपद्रवों से त्राण पाने का मार्ग सदैव नहीं मिल सकेगा। इसके अतिरिक्त किसी रक्षक के अभाव में एक रूपवती स्त्री के लिये, कामदग्ध पुरुषों की अपेक्षा जंगली पशु भी कम ही भयंकर होते हैं। इसलिये बलात् किसी परपुरुष की पत्नी बना ली जाने की अपेक्षा किसी पशु का आहार बन जाना कहीं अच्छा है।"

ऐसा विचार कर वह केवल कन्द-मूल-फल के आहार और सरोवर के जल से प्राणधारण करती हुई कई दिन तक जंगल में आगे बढ़ती चली गई। झाड़ियों में फँसकर उसके वस्त्र चिथड़े-चिथड़े हो गए। उसके पैरों में कितने ही कांटे धँस गए, जिसके कारण उनमें से रक्त की बूँदें निकल कर मार्ग की घास पर लालमणियों के समान गिरीं। जब-जब उसे अपने वियुक्त पति का स्मरण होता था, तब-तब दुःख के कारण उसके नेत्रों से अश्रु की बूँदें झरती थीं, जो उन लालमणियों जैसी रक्त की बूँदों के बीच-बीच में पड़े हुए मोतियों के समान प्रतीत होती थीं। वह वन के भीतर जितना ही आगे बढ़ती जाती थी, उतना ही उसका जी बैठता जाता था और अपने स्वामी की भुजाओं के अमृत तुल्य अवलंब की उत्कंठा बढ़ती जाती थी। हाय ! बेचारी स्त्रियों का साहस पुरुषों के पौरुष के दर्पण में पड़ी हुई उसकी फीकी छाया मात्र है जो उनकी अनुपस्थिति में लुप्त हो जाता है। अंत में एक दिन ऐसा आया, जब किसी अज्ञात अनिष्ट के भय से उसका हृदय व्याकुल हो गया और वह धम्म से एक वृक्ष की जड़ के पास बैठ गई और उसे अपने अश्रुओं से सींचने लगी।

नियति की प्रेरणा से ऐसा संयोग आया कि कुछ भील वन में आखेट करते हुए उसी मार्ग पर आ पड़े और उन्होंने पत्तियों पर पड़ी हुई रक्त की बूँदें देखीं। उन्हें देखते-देखते वे उसी मार्ग से आगे बढ़े और आपस में कहने लगे—"कोई घायल पशु इस मार्ग से गया है।" वे बढ़ते जाते थे और बीच-बीच में रुककर कान लगाकर सुनते जाते थे। अचानक उन्हें वन में से स्त्री के रुदन का शब्द सुनाई पड़ा। तब उन्होंने आश्चर्य में आकर जिधर से शब्द आ रहा था उसी ओर पैर बढ़ाए और अचानक उन्हें वृक्ष के नीचे बैठी हुई स्त्री दिखाई पड़ी; जो महेश्वर द्वारा भस्म किए गए अपने पति के लिये विलाप करती हुई रति के समान प्रतीत हो रही थी। उसके वस्त्र फट गए थे, केश अस्त-व्यस्त हो गए थे और उसके अश्रुपूर्ण विशाल नयन ऐसे सुन्दर लग रहे थे, जैसे सरोवर में क्रीड़ा करते हुए हंसों द्वारा उछाली हुई जल की बूँदों से शोभित नील कमल-दल। वे भील उसे देख कर अत्यन्त चकित हुए और आपस में कहने लगे—"फटे हुए वस्त्रों में भी इतनी सुन्दर और जंगल में अकेली रोती हुई यह नर्तकी, एक महान् आश्चर्य है।" फिर वे उसके पास जाकर उसे चारों ओर से घेर कर खड़े हो गए। उन कृष्णवर्ण वनवासियों के बीच में घिरी हुई वह ऐसी जान पड़ती थी, जैसे राहु के मुख में पड़ी हुई चन्द्रकला। कुछ क्षणों में ही उसकी सुन्दरता के मोहन-मंत्र ने, उनके बाणों की भाँति उनके हृदयों में प्रविष्ट होकर उन्हें विषाक्त कर दिया। तब प्रत्येक ने अपने मन में कहा—"यह मेरी स्त्री बनेगी।" फिर वे उसके लिये आपस में विवाद करने लगे और उन्होंने निश्चय किया कि उसे पाने के लिये प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग्य की परीक्षा करे। परन्तु इसके विषय में वे एकमत नहीं हो

सके और उनमें घोर विवाद होने लगा, जैसे सर्पों के नीड़ में किसी ने पत्थर फेंक दिया हो।

फिर एक ने श्री को पकड़ लिया और क्रमशः दूसरों ने भी उसका अनुकरण किया और उस खींचातानी में उसकी दुर्गति हो गई। अन्त में उनमें से प्रत्येक ने उसके सौन्दर्य से उन्मत्त होकर उस पर अपना ही एकाधिकार स्थापित करना चाहा, जिससे उनमें लात-घूँसे चलने लगें और पूरा युद्ध छिड़ गया। प्रत्येक अपनी रक्षा की अपेक्षा दूसरे का वध करने के लिये अधिक आतुर था। परिणाम यह हुआ कि थोड़ी ही देर में वे सब के सब या तो मारे गए या आहत हो जाने के कारण हिलने-डुलने में असमर्थ होकर मरणासन्न अवस्था में उसके चारों ओर धराशायी हो गए। तब श्री उपयुक्त अवसर देख भय से प्रेरित हो उठकर वहाँ से भाग चली। उसके शरीर पर उन भीलों के रक्त के साथ-साथ उसके अपने रक्त के भी छींटे पड़े हुए थे, क्योंकि उनके आपसी संघर्ष में संयोगवश एक भील द्वारा दूसरे पर किया गया प्रहार उसी (श्री) के ऊपर बैठ गया था, जिससे वह आहत हो गई थी। वह उसी अवस्था में वृक्षों की जड़ों से ठोकर खाती और लताओं से उलझती हुई वेग के साथ दौड़ती चली गई और अंत में एक वन-सरोवर पर जा पहुँची। वहाँ वह पानी के किनारे लेट गई और जी भर कर पानी पिया। फिर उसने अपने घाव और रक्त के धब्बे साफ किए और पैर धोए और थकावट के मारे वहीं सो गई। उसके अनन्तर चन्द्रमा उदित हुआ और उसने चुपके-चुपके वृक्षों में से झाँक कर अपनी हर्ष-कम्पित किरणों द्वारा उसका चुम्बन किया। फिर वहाँ वन के पशु एक-एक करके सरोवर में जल पीने के लिये आए, परन्तु

त्र्यम्बक के आज्ञाधीन होने के कारण उन्होंने उसे कोई हानि नहीं पहुँचाई। उसे सोई हुई देख उन्होंने उसके हाथ पैर चाटे।

संयोगात् यह सरोवर वही था, जिसके तट पर दैत्य-कन्या उलूपी से अमरसिंह की भेंट हुई थी। अपने नित्य के अभ्यास के अनुसार रात को उलूपी स्वयं नृत्य एवं क्रीड़ा करने के लिये वहाँ आई। जब वह वहाँ पहुँची तो उसने सरोवर के तट पर सोती हुई श्री को देखा। यद्यपि श्री की आँखें नींद के कारण बन्द थीं, फिर भी उसके अंगों के लावण्य को देखकर वह दैत्यकन्या बहुत आश्चर्य करने लगी। अन्त में उसने कुतूहल-वश अपनी उँगली से उसके वक्षस्थल को स्पर्श किया और अपने मन में कहा—"यह माया है या वास्तव में कोई स्त्री है, और यह जीवित है या मर गई है ?" श्री उसके स्पर्श से काँप उठी, क्योंकि उसके निद्रित आत्मा को किसी भावी अनिष्ट का संकेत मिल गया। उसने अपनी आँखें खोल दीं और उनकी प्रगाढ़ नीलिमा ने उस दैत्य-कन्या के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न कर दी और उसे और भी अधिक आश्चर्य हुआ।

तब उन दोनों ने प्रकाश और अन्धकार के समान एक दूसरी को देखा और प्रत्येक स्वयं अपनी सुन्दरता को भूलकर दूसरी के लावण्य पर आश्चर्य करने लगी। अन्त में उलूपी ने कहा – "तू कौन है ? तेरा और तेरे कुल का नाम क्या है और तू कहाँ से और क्यों मेरे सरोवर पर आई ?"

श्री ने कहा—"मैं एक राजकुमारी हूँ और अपने खोए हुए पति को खोज रही हूँ। जब वे कमल के देश से लौटकर मेरे पास आए तो अपने पूर्व जन्म के अपराधों के फलस्वरूप मैं उन्हें पाते ही तत्काल फिर खो

बैठी ।'' परन्तु उसकी बात को सुनते ही अचानक उलूपी का हृदय क्रोध और द्वेष से भर गया । उसने अपने मन में कहा—''हँः, यही है वह कमल जिसके कारण उस सुन्दर परदेशी ने, जिसने इस सरोवर के तट पर मुझे नाचते हुए देखा था, मेरी सुन्दरता को तुच्छ समझकर उससे घृणा की थी ।'' वह तुरन्त तन कर खड़ी हो गई और भयंकर रूप धारण कर आरे के समान अपने दाँत कटकटाती हुई श्री पर झपटी । विकराल मुँह बना कर उसने श्री से कहा—''अभागिनी ! तू इस वन के बाहर कभी नहीं जा सकेगी और अपने इस अभिशप्त सौन्दर्य को लिए हुए सदैव इन्हीं वृक्षों के बीच भटका करेगी, जहाँ क्रूर मायावी जीव तुझे हर घड़ी घेरे रहेंगे और इतना त्रास देंगे कि तू स्वयं अपनी मौत मनाएगी । तेरे पति में सामर्थ्य हो तो वह आकर अब तेरी रक्षा करे ।'' यह कहकर वह अट्टहास करती हुई अदृश्य हो गई और श्री वहीं सरोवर के तट पर मूर्छित हो गई ।

उलूपी जब वन में दौड़ी जा रही थी तो मार्ग में उसे बृद्ध निशाचर वैरागी मिला । उससे उसने सब समाचार कहा और उससे प्रार्थना की कि इस दुष्ट मानव-कन्या को खूब दुःख दो और उसे माया से छलो । क्योंकि उसने मुझे घोर कष्ट पहुँचाया है । वह निशाचर इस सुअवसर को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ । क्योंकि अमरसिंह ने जिस प्रकार उस पर आक्रमण किया था और उसकी जीभ काट ली थी, वह सब उसे स्मरण था । परन्तु उसने कहा—''ऐसा करना सरल नहीं, क्योंकि पशुपति ने हमें उसको कष्ट पहुँचाने का निषेध कर दिया है । परन्तु, यद्यपि मैं एक नीच पुरुष की इस कुलटा स्त्री को हानि नहीं पहुँचाऊँगा, फिर भी इसके

साथ ऐसा प्रपंच रचूँगा कि यह स्वयं ही अपने प्राण त्याग देने की इच्छा करेगी।"

—चौदह—

इधर श्री जब चैतन्य हुई तो अपनी अनागत विपत्ति के भय से बैठकर रोने लगी। क्योंकि उसे उस दैत्य-कन्या की द्वेषपूर्ण कुचेष्टाओं से अनिष्ट की आशंका हो गई। फिर भी उसकी समझ में यह नहीं आया कि वह दैत्य-कन्या किस कारण उससे इतनी चिढ़ गई और वह किस प्रकार उसके कोप का भाजन हो गई। अतः जैसे ही प्रभात हुआ, वह उठ खड़ी हुई और भय से कांपती हुई वन में चल पड़ी, जहाँ अब भी पेड़ों के नीचे अँधेरी छायाएँ थीं। पत्ते गिरने का भी शब्द सुनकर वह चौंक पड़ती थी और उस समय भय से मुक्ति पाने के लिये उसकी अपने पति के निकट रहने की उत्कंठा अत्यधिक बढ़ जाती थी।

थोड़ी देर चलने के बाद वह रुक गई और कान लगाकर सुनने लगी। क्योंकि वृक्षों के नीचे उसे पैरों की आहट सुनाई पड़ी, जैसे कोई उसी की ओर चला आ रहा हो। उसका हृदय वेग से धड़कने लगा, मानो वह कहना चाहता हो कि तुम मुझे अपना शरीर छोड़ कर चले जाने दो, जिससे मैं तुम्हारे ऊपर आने वाली विपत्ति से बच जाऊँ। तब वह एक पेड़ के खोखले में छिप गई और भय के मारे वहीं से बाहर झाँकने लगी। उस समय अचानक एक अद्भुत बात हुई। उसने भोर के धुँधले प्रकाश में अपने पति को अपनी ओर आते हुए देखा। इससे उसे महान् आश्चर्य हुआ और वह भावावेश में आकर तुरन्त उसकी ओर

दौड़ी। उसके पास पहुँचकर उसने उसे अपने अंक में भर लिया और कहा—"अन्त में फिर तुम्हें पा ही गई।" यह कहकर वह फूट-फूट कर रो पड़ी और उस समय अपना सारा दुःख शोक भूल गई। फिर उसने उसकी ओर देखा और हर्ष से हँसने लगी। उसने अपनी आँखें मूँद लीं, मानो सूर्य की भाँति उसके दर्शन से उसकी आँखें चौंधिया गईं। कुछ क्षणों के उपरान्त उसने फिर अपनी आँखें खोलीं, तब वह चौंककर चिल्ला उठी। उसका रक्त जम गया और उसके हृदय की गति बन्द हो गई, क्योंकि जिसे उसने अपनी बाँहों में जकड़ रक्खा था, वह उसका पति नहीं, प्रत्युत बालों से ढका क्रूर आँखों वाला कोई जीव था, जो मनुष्य के आकार में कोई पशु जान पड़ता था। उसने अपनी आँखें श्री की आँखों पर गड़ा दीं और फिर वह हँसने और पशु की भाँति गुर्राने और हाँफने लगा; जिससे उसकी तेज गर्म साँस उसके (श्री के) चेहरे पर पड़ने लगी। तब उसकी चेतना ने कायर की भाँति उसका साथ छोड़ दिया और वह मूर्छित हो धरती पर गिर पड़ी।

अन्त में जब वह स्वस्थ हुई तो उसकी आँखें खुलीं और उसने देखा कि सूर्य पश्चिम दिशा में अस्त हो रहा है। चन्द्रमा का उदय अभी नहीं हुआ था, क्योंकि वह कृष्ण पक्ष का आरम्भ था। तब अकस्मात् उसकी स्मृति लौट आई और वह भय से काँप उठी। उसने अपने मन में कहा—"क्या यह सत्य था, अथवा एक दुःस्वप्न मात्र ? अवश्य ही यह केवल एक स्वप्न था, क्योंकि मैं अत्यन्त दुर्बल और थकी हुई हूँ। और इस समय भी मैं नहीं जानती कि सो रही हूँ या जाग रही हूँ।"

तब उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं, क्योंकि उसे भय लगता था कि

उन्हें खोलने से पता नहीं वृक्षों की छाया में उसे क्या दिखाई पड़ जाय। उसी समय कृष्ण पक्ष का क्षीण चन्द्रमा उदित हुआ और उसने पत्तियों के अन्तराल से अपनी किरणें नीचे ढलका दीं, जो मानो श्री के ही समान भय के कारण फीकी और पीली थीं। अन्त में उस सन्नाटे और एकाकीपन को और अधिक न सह सकने के कारण वह उठ खड़ी हुई और धीरे-धीरे रुक-रुक कर, पग रखते हुए उस अँधेरे जंगल में चलने लगी। उसकी समझ में नहीं आता था कि किधर जायँ, फिर भी उसे जहाँ वह थी, वहीं खड़ी रहने का साहस नहीं होता था।

जाते-जाते अचानक उसने सामने दृष्टि उठाई तो एक खुले स्थान में फिर अपने पति को एक वृक्ष के नीचे चुपचाप लेटे हुए देखा। वह एक दम वहीं रुक गई और अनिश्चितता के झूले में झूलती वहीं खड़ी रही; क्योंकि एक ओर तो पुनर्मिलन का हर्ष, आत्मरक्षा की आकाँक्षा और एकान्त का भय—ये तीनों तिहरी रस्सी की भाँति उसे उसकी (पति की) ओर खींच रहे थे और दूसरी ओर अभी-अभी उसे जो धोखा हुआ था, उसकी स्मृति, छलना के भय और अज्ञात विपत्ति की आशंका ने उसे वृक्ष की जड़ों की भाँति पृथ्वी पर गड़ा रखा था। वहीं खड़ी-खड़ी वह दो विरुद्ध दिशाओं से चलने वाले समीर से प्रेरित नवपल्लव के समान दोलायमान हो रही थी और चन्द्रकान्त मणि से सुधाबिन्दु के समान उसके नेत्रों से बड़े-बड़े अश्रुबिन्दु गिर रहे थे। अपने पति के संबंध में उसके मन में यह संशय हो रहा था कि ये जीवित हैं या निष्प्राण, क्योंकि चन्द्रमा के पीले प्रकाश में उसका चेहरा फीका दिखाई पड़ रहा था। उसी समय उसकी आँखें खुल गईं और दोनों ने एक दूसरे को देखा। तब श्री तो जहाँ की

तहाँ खड़ी रही, क्योंकि वह वहाँ से हिलने में असमर्थ थी, परन्तु अमरसिंह उछलकर खड़ा हो गया, वह दौड़कर उसके पास गया और उसे अंक में भर लिया, यद्यपि वह उसके आलिंगन से मुक्त होने की चेष्टा करती रही। उसने कहा—"प्रिये, तुम्हारे दर्शन ने मुझे मृत्यु के मुख में से निकाल लिया, क्योंकि मैंने इस शरीर को त्याग देने का निश्चय कर लिया था।" उसने फिर कहा—"हाय, हाय ! सुनयने, तुम मुझसे इतना सकुचाती क्यों हो ?" परन्तु श्री चुप रही। वह घोर संशय में पड़ी हुई थी और घबराहट के मारे अपने हृदय की धड़कन से हिल रही थी। रह-रह कर वह अपनी आंखें उठाकर सन्देह के साथ उसे देखती थी। अन्त में उसने धीरे से कहा—"क्या तुम सचमुच मेरे स्वामी हो ? क्या तुम सचमुच वही हो, कोई दूसरे नहीं ?" तब उस पुरुष ने कहा—"तुम यह क्या पूछ रही हो और कैसा सन्देह कर रही हो ? क्या तुम मुझे एकदम भूल गई ? अभी तो थोड़ा ही समय हुआ, जब इन्दिरालय के राजभवन में तुम मुझसे वियुक्त हुई थीं।" श्री ने निःश्वास लेकर कहा—"अभी अभी मेरे पास एक व्यक्ति आया था, जिसका सम्पूर्ण आकार-प्रकार तुम्हारे ही जैसा था, परन्तु उसने मुझसे छल किया। और अब भी मैं उसकी बात सोचती हूँ तो कांप उठती हूं। डरती हूं कि कहीं तुम भी उसी की भांति कोई दूसरे व्यक्ति न हो।"

तब उसने कहा—"प्रिये, तुम दुर्बल हो गई हो और स्वप्न द्वारा छली गई हो। परन्तु इस समय तुम स्वप्न नहीं देख रही हो। तुम निश्चय समझो, मैं कोई दूसरा व्यक्ति नहीं, तुम स्वयं मेरे ही पास हो। बस एक चुम्बन दो और तुम्हारा सब भय अभी दूर हो जायगा।" यह कहकर

वह नीचे झुका तो श्री ने मन में यह कहते हुए कि वह सचमुच केवल स्वप्न था, अपना सस्मित वदन ऊपर उठा दिया। परन्तु ज्योंही उसने उसके मुख का स्पर्श किया, त्यों ही उसका रूप बदलकर विशाल और विकराल हो गया और उसकी लंबी जीभ, जो गाय की जीभ के समान थी, उसके होठों के बाहर लटकने लगी। उसने एक विकट हास्य किया और फिर वह अदृश्य हो गया। इधर यमराज की तर्जनी सी निकली हुई उसकी जिह्वा से भयभीत श्री धरती पर गिर पड़ी।

—पन्द्रह—

वह रात भर उसी प्रकार पड़ी रही और अन्त में जब दिन निकल आया तब किसी प्रकार उसकी चेतना लौटी। उसने उठने का प्रयत्न किया, परन्तु वह उठ न सकी, क्योंकि उसके अंग काम नहीं कर रहे थे। इसलिये वह वहीं पड़ी रही। उसका शरीर हिम के समान शीतल था और वह वायुविकम्पित सरोवर के जलपृष्ठ की भांति कांप रही थी।

तब सूर्य उदयाचल को त्याग कर धीरे-धीरे आकाश में ऊपर उठा और उसकी किरणों की उष्णता पाकर उसमें कुछ शक्ति आ गई। कुछ क्षणों के उपरान्त वह उठकर खड़ी हो गई, परन्तु उसके पैर वश में नहीं थे, अतः जिधर वे ले चले उसी ओर चलने लगी और अन्त में उसी वन के एक दूसरे सरोवर के पास पहुंच गई। वहाँ वह लेट गई और झुककर उस सरोवर का जल पिया। उसके दर्पण के समान जल में उसने अपना रूप देखा तो उसका शरीर बालचन्द्र के समान क्षीण और उसका रङ्ग मध्याह्न-कालीन चन्द्रमा के समान पीला और फीका हो गया था। उसके

लंबे केश उसके कंधों पर से पानी में गिर पड़े और भीग गए। तब उसने उन्हें समेटकर जूड़ा बाँध लिया। वह दिन भर उस सरोवर-तट पर ही रही, आगे बढ़ने का साहस नहीं हुआ; क्योंकि उसने अपने मन में कहा—"हजारों मौत से भी बुरे माया प्रपंचों से भरे हुए इस वन में आगे बढ़ते जाने की अपेक्षा तो मेरे लिये यही अधिक अच्छा है कि मैं यहीं रह कर भूखों मर जाऊँ, या फिर किसी वन्य पशु का आहार बन जाऊँ। क्योंकि यहाँ के मायावी जीव स्वजन के वेष में आते हैं और मेरे हृदय में प्रविष्ट होकर उसे सर्प के समान डँस लेते हैं और जिनके लिये मैं सबसे अधिक लालायित हूँ, उनके अमृत तुल्य दर्शन को विषमय बना देते हैं। निश्चय ही मैंने पूर्व जन्म में घोर पाप किए थे, जिनके परिणाम स्वरूप इसी जन्म में मैंने अनेक जन्मों के कष्ट भोग लिए। शौर अब तो जान पड़ता है, मैं और अधिक नहीं सह सकूँगी, क्योंकि मेरी शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही है। कितना आनन्द होता, यदि मेरे स्वामी सचमुच मुझे मिल जाते, चाहे उनके अंक में पहुँचते ही मेरी मृत्यु हो जाती।"

इस प्रकार वह चक्रवाक से वियुक्त चक्रवाकी के समान अपने पति के वियोग से दु.खित हो वहीं सरोवर के तट पर बैठी रही, और उधर बलि-रिपु त्रिविक्रम (विष्णु) के समान सूर्य (त्रिविक्रम) ने तीन डग में आकाश नाप लिया। अन्त में जब वह अस्त हो गया तो वह भी बैठे-बैठे थक गई और वहीं सरोवर के तट पर सो गई। तब स्वप्न में उसने अपने पति को देखा और उसके आलिंगन रूपी अमृत का छक कर पान किया। निशीथ बेला में उसकी निद्रा भंग हुई और वह उठ बैठी। और तब उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, क्योंकि उसने फिर अपने पति को चुपचाप

अपने पास बैठे हुए देखा। तब अत्यन्त व्यथित हो वह उछल कर उठ खड़ी हुई और भागने के लिए दूसरी ओर मुँह फेरा तो जोर से चिल्ला उठी, क्योंकि उधर उसने सामने दूसरे पति को खड़ा पाया। उसी समय अचानक सारा वन हँसी से गूँज उठा। तब उसकी बुद्धि नष्ट हो गई और वह पागल हो गई। उसने कहा—"धिक् है इस जंगल को, जिसमें पति ही पति भरे हुए हैं। और फिर वह आँख-कान बन्द कर वन में दौड़ने लगी।"

—सोलह—

और अब, नियति की आज्ञा से ऐसा संयोग घटित हुआ कि अमर-सिंह, जो अपनी पत्नी की खोज में सारा संसार छान चुका और इधर-उधर जंगल में भटक चुका था, उसी सरोवर के निकट दूसरे स्थान पर सो रहा था। वह नींद में ही अचानक हँसने लगा, क्योंकि स्वप्न में वह फिर कमल के देश में पहुँच गया था और एक बार फिर वहाँ के ज्योत्स्ना-विभासित विशाल कोष्ठ में स्वर्ण पर्यंक के निकट खड़ा था। उसने बहुत धीरे-धीरे मृत-चैल को उठाया और देर तक वह श्री के मुख को देखता रहा। परन्तु उसके देखते-देखते वह मुख बन्दर का हो गया और उसने लंबी लाल जिह्वा उसकी ओर निकाल दी। उसके सामने अब श्री का मुख नहीं, प्रत्युत उस पुराने वृद्ध वैरागी का मुख था। तब उसके कानों में अट्टहास की ध्वनि गूँज उठी, जिसमें डिंडिमनाद और घोषकों का स्वर भी मिला हुआ था। तब वह चौंक कर जाग पड़ा और उठ खड़ा हुआ। उसकी भौंहों पर ठंडा पसीना आ गया।

जाग जाने पर भी उसके कानों में हँसी का शब्द गूँज रहा था और वह वहाँ खड़ा-खड़ा अब भी इस सन्देह में पड़ा हुआ था कि मैं नींद में हूँ या जाग रहा हूँ। उसी समय उसने आँख उठाई तो सामने चन्द्रमा के प्रकाश में उसे एक स्त्री की आकृति दिखाई पड़ी जो उसी की ओर दौड़ी आ रही थी। उसने तुरन्त श्री को पहिचान लिया, क्योंकि उसके लहराते हुए बालों की छाया में उसके विशाल नयन चन्द्रिका में उसकी तलवार की धार के समान चमक रहे थे और वे रात्रि में उसके सामने श्याम जलद में विद्युच्छटा के समान कौंध उठते थे। तब वह हर्ष से चिल्लाकर उससे मिलने के लिये दौड़ा। परन्तु जब श्री ने उसे अपनी ओर आते देखा तो वहीं खड़ी हो गई और प्रेताविष्ट की भाँति हँसने लगी। फिर वह चिल्ला उठी—"हैं, फिर दूसरा!" और अपनी आँखों को हाथों से ढककर वह जी छोड़कर वहाँ से भागी। परन्तु अमरसिंह को इससे इतना आश्चर्य हुआ कि वह ठकरा कर वहीं खड़ा रह गया, जैसे वृक्ष की भाँति पृथ्वी में गड़ गया हो। वह अपने मन में सोचने लगा—"यह सत्य है या स्वप्न? मुझसे तो यह इस प्रकार डर कर भागी, जैसे मैं उसका शत्रु हूँ।"

इसके पश्चात वह विक्षिप्त की भांति श्री! श्री! चिल्लाता हुआ उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। इस प्रकार वे दोनों उस चाँदनी रात में वन के भीतर, कभी वृक्षों के नीचे और कभी उनके बाहर, चीते और कृष्ण-मृग की भांति दौड़ते रहे। दौड़ते-दौड़ते अचानक श्री फिसल कर गिर पड़ी। तब अमरसिंह की आंखों के सामने ही भूरे रंग का एक सिंह जंगल में से कूदा और भूमि पर पड़ी हुई श्री के ऊपर जाकर खड़ा हो गया। भय के मारे अमरसिंह का मुख विवर्ण हो गया और वह कराह उठा। फिर

क्षण भर में वह उनके पास पहुँच गया और उसने पूरा बल लगा कर सिंह के ऊपर खड्ग से प्रहार किया। परन्तु यह क्या ? वह छाया-सिंह तो अदृश्य हो गया। बात यह थी कि यह सब उस कुटिल निशाचर वृद्ध वैरागी की माया थी। परन्तु अमरसिंह का तीव्र खड्ग ठीक श्री के कन्धे पर बैठा और उसका हृदय तक काट ले गया। तब अमरसिंह रोता हुआ उसके पास ही घुटनों के बल बैठ गया और अपनी प्रिया को अपने अंक में उठा लिया। उसके रक्त की धारा उसके प्राणों के साथ-साथ अमरसिंह के शरीर पर प्रवाहित हो रही थी। मरणासन्न श्री ने अपनी आंखें खोल दीं और वे तत्क्षण शान्ति से पूर्ण हो गईं, क्योंकि अन्त में उसने अपने स्वामी को पहिचान लिया। उसने धीरे-धीरे कहा—"नाथ, मेरे लिये आप मत रोइए, क्योंकि आपके दर्शन के रूप में मुझे मुक्ति प्राप्त हो गई। दिन भर मैंने आपको ढूँढ़ा, परन्तु सन्ध्या समय अपने प्राण-सूर्य के अस्त होने के पहले ही मैं आप को पा गई। यही मेरे लिये बहुत है।"

प्रभात



प्रभात

उसी क्षण शाप का अन्त हो गया और दोनों प्रेमियों को पुनः अमृतत्व प्राप्त हो गया। उन्होंने विस्मय के साथ एक दूसरे को देखा, उन्हें ऐसा जान पड़ा, जैसे वे स्वप्न देखते-देखते जाग पड़े हों। उनके आत्मा उनके द्वारा परित्यक्त शरीर से निकलकर परस्पर आलिंगन बद्ध हो स्वर्ग में अपने-अपने धाम को चले गए।

परन्तु कैलास पर आसीन महेश्वर ने उन्हें जाते हुए देखा। अपने योगबल से उन्होंने सब कुछ जान लिया और अपने मन में कहा—"ये दोनों मूर्ख प्रेमी यह समझकर प्रसन्न हो रहे हैं कि हम निद्रा से जाग गए, और इन्हें यह पता नहीं कि जिसे ये जागरण समझ रहे हैं, वह भी एक अवान्तर स्वप्न (स्वप्न के अन्तर्गत स्वप्न) ही है और वे अब भी निद्रा में ही हैं। यह सोचकर वे अट्टहास कर उठे और उनके हास्य का उच्च-गंभीर शब्द पटह-ध्वनि के समान हिमालय की नीली घाटियों और गुफाओं में गूँज गया।

